रजी की धर्मपत्नी बनकर

हुए अपनी बेटियों को लिखे
वाह एक महत्त्वपूर्ण पारि-
हुए कि उन्होंने एक नयी
क्रम शुरू किया । उनके
, यह भी अच्छा है।···
अलावा भोजन, विज्ञान,
ए।···कातना । गांधीजी
।" सरलाजी के माध्यम
संत ने जो हरिजन-आश्रम
मार्थ का कुछ काम करना
जो लोग अपने जीवन में
ए कुछ करो और शीघ्र

मारजी की प्रथम संतान
विक्रम रखा। 'आदित्य'
तेज, प्रताप और भविष्य

नाम पत्र, ५ अप्रैल १९४२

तृतीय पर्व

प्रौढ़ावस्था

संपन्नता का मर्म

स्वप्न : सीमाहीन

शब्द-स्वर-रंग-लय

संपन्नता का मर्म

घनश्यामदासजी की किशोरावस्था उनके जीवन का वह वर्षाकाल था, जो हर बीज को उगाकर मरुभूमि की धरती को हरा-भरा कर देने के लिए आतुर हो उठता है।

घनश्यामदासजी की युवावस्था धर्म को अर्थ से जोड़नेवाली वसंत ऋतु-जैसी थी। इसने जीवन-मूल्यों की जड़ों को गहराई दी। इससे जीवन-उपवन के सभी वृक्ष व पौधे, फल-फूल से सुशोभित हुए।

प्रौढ़ावस्था उस शरद ऋतु जैसी है, जो वर्षाकाल के जल को और वसंत ऋतु की समृद्धि को तट-रूपी मर्यादा देती है।

प्रौढ़ मस्तिष्क की यह कथा दूसरी है। इस अवस्था में बद्ध-मूल संस्कार ही विशेष महत्त्व रखते हैं। युवा घनश्यामदासजी की जो जीवन-पूंजी गतिशील होती हुई अब प्रौढ़ता पर आ पहुंची थी, उसके स्पर्श मात्र से यह बोध होता है कि कर्म की सुंदरता क्या होती है।

घनश्यामदासजी प्रौढ़ावस्था में पहुंचते-पहुंचते जागरण के आधुनिक काल में प्रविष्ट हुए। उन्होंने अपने इस समय को स्वभावतः बड़े ध्यान से देखा और पाया कि इसकी प्रेरणा दुहरी है। उसी प्रेरणा से एक ओर घनश्यामदासजी ने अपने अंतर की शक्तियों को फिर से नापा-तोला। जीवन के विषम खंडों में व्याप्त एकता को पहचाना तथा मानसिक संस्कार को प्रधानता दी। दूसरी ओर उन्होंने यथार्थ जीवन के पुनर्निर्माण की दिशा में खोज की। भारतीय जीवन की प्रत्येक दिशा में नवीन प्रयोग किये और उसकी शक्तियों को कर्म में साकारता दी। ऐसा कर्म, जिससे राष्ट्रीय संदर्भ और अंतर्राष्ट्रीय आयाम मिला।

यही है घनश्यामदासजी के जीवन के प्रौढ़ावस्था की शारदीय कथा--उद्योग की जययात्रा।

यह उद्योग-कथा त्रि-आयामी है ।

उद्योग को 'योग' के साथ देखा गया है। इसका प्रथम आयाम--देश को मुक्त और संपन्न करने के लिए समाज को शिक्षित करना है। द्वितीय आयाम--गुलामी से गुजरे हुए देश-समाज की मुक्ति कठोर अनुशासन और अथक परिश्रम से ही संभव है। तृतीय आयाम--व्यक्ति और समाज को सत्य भाव से स्वराज्य-साधना की दीक्षा और संस्कार मिलना है।

स्वराज्य के पथ पर महात्मा गांधी के साथ चलकर घनश्यामदासजी ने यह बोध प्राप्त कर लिया था कि प्राणमय वस्तु की परिणति पहले से ही समग्रता का रास्ता पकड़कर होती है। ऐसा न होता तो शिशु केवल पैर का अंगूठा वनकर जन्म लेता, फिर धीरे-धीरे वढ़कर पांव बनता और इस तरह बीस वर्ष की अवस्था तक उसका पूरा मानवीय शरीर दिखायी पड़ता। शिशु में समग्रता का आदर्श पहले से ही है, इसीलिए उसके जीवन से इतना आनंद प्राप्त कर सकते हैं।

घनश्यामदासजी ने भारत की स्वतंत्रता की पूर्व संध्या में ही यह देख लिया था कि ऐसी ही दशा हमारी भी होगी, यदि स्वराज को एक लंबे-प्राथमिक काल में हम केवल चर्खे से कते हुए सूत के आकार में देखते रहे। इस तरह के कर्म में महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति कुछ दिनों तक देश के एक सीमित वर्ग को प्रवृत्त कर सकते हैं, क्योंकि उनकी व्यक्तिगत महानता में लोगों की श्रद्धा है। उनका आदेश-पालन ही उस वर्ग के कर्म की इतिश्री है। घनश्यामदासजी ने सोचा--इस तरह की मति स्वराज-लाभ के अनुकूल नहीं है। स्वदेश के दायित्व को केवल सूत कातकर नहीं, बल्कि सम्यक्, समग्र भाव से देश की समृद्धि एवं विकास साधना को उद्योग-आकार में देश के विविध केंद्रों में प्रतिष्ठित करना अनिवार्य है। जनसाधारण का मंगल, जीवन के सभी पक्षों के समन्वय से ही होता है। स्वास्थ्य, विद्या, ज्ञान, धर्म, आस्था और आनंद के साथ यदि मनुष्य को कल्याण मिल सके, तभी सब कुछ मंगलमय हो पायेगा।

उद्योग के प्रथम आयाम, शिक्षा से उनकी जय-यात्रा का शुभारंभ होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए घनश्यामदासजी ने करोड़ों रुपये का दान देकर 'बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट' की सन उन्नीस सौ छब्बीस में स्थापना की। इस ट्रस्ट का बीजारोपण घनश्यामदासजी के पितामह शिवनारायणजी ने सन उन्नीस सौ एक में पिलानी गांव

में एक छोटी-सी पाठशाला के रूप में किया था। शिवनारायणजी ने पाठशाला की स्थापना ही की थी, अपने पौत्रों तथा ग्राम के अन्य बालकों को विद्यारंभ कराने के लिए। इसी पाठशाला में उनके दो पौत्र रामेश्वरदासजी और घनश्यामदासजी ने विद्यारंभ किया। वही बीज धीरे-धीरे एक विशाल वटवृक्ष के रूप में 'बड़वाली पिलानी' में 'बिड़ला विद्या विहार' बनकर विकसित हुआ।

इस ट्रस्ट के सदस्यों में बिड़ला-परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य उल्लेखनीय व्यक्ति रहे हैं जैसे--जमनालाल बजाज, राजेंद्रप्रसाद, के० एम० मुंशी, सी० एफ० एंड्रूज, पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, महादेवभाई देसाई, हृदयनाथ कुंजरू, सर राधाकृष्णन्, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका आदि। इस ट्रस्ट के कार्यकलापों की महात्मा गांधी, महामना मालवीय, जवाहरलाल नेहरू, राजेंद्रप्रसाद, डा० राधाकृष्णन्, सरदार वल्लभभाई पटेल, गोविंदवल्लभ पंत, शिक्षाशास्त्री अमरनाथ झा और सर मारिस ग्वायर जैसे देश की महान विभूतियों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।१३१

इस ट्रस्ट द्वारा पिलानी में एक बिड़ला इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी एंड साइंस नामक बृहत तकनीकी शिक्षा संस्थान, एक पब्लिक स्कूल, एक लड़कियों और एक लड़कों का हायर सैकेंडरी स्कूल, लड़के-लड़कियों के कई मिडिल स्कूल स्थापित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त नैनीताल में एक पब्लिक स्कूल, आनंद (गुजरात) का 'विश्वकर्मा महाविद्यालय', भिवानी (हरियाणा) का 'टेक्नालाजिकल इंस्टीट्यूट आफ टेक्सटाइल' और रांची (बिहार) में बिड़ला स्कूल आफ टेक्नालाजी एंड साइंस आदि इस ट्रस्ट की उल्लेखनीय संस्थाएं है।

बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट के सुचारु संचालन में, ट्रस्ट के अध्यक्ष घनश्यामदासजी ने संस्थाओं की देखरेख का भार केवल अपने तक सीमित न रखकर परिवार के युवक सदस्यों को भी सौंपा। ऐसा करने में उनका उद्देश्य यह था कि परिवार की नयी पीढ़ी का ध्यान केवल अर्थोपार्जन पर ही केंद्रित न रहकर, समाज और राष्ट्र-सेवा की तरफ भी जाये।

घनश्यामदासजी की सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा थी कि पिलानी में एक इंजीनियरिंग कालेज स्थापित किया जाये। अपनी इस महत्त्वाकांक्षा को पूरी करने में उन्हें अपने सभी लड़कों और रिश्तेदारों का सहयोग मिला। फलस्वरूप पिलानी में इंजीनियरिंग कालेज शुरू किया गया। बाद में यही कालेज एक स्वायत्तशासी विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित हो गया और उसका नाम रखा गया--'बिड़ला इंस्टीट्यूट आफ

१३१. डायमंड जुबली, कामांमोरेशन वाल्यूम

टेक्नालाजी एंड साइंसिस' (बी० आई० टी० एस०)। घनश्यामदासजी ने पिलानी का सारा काम अपने लड़कों और अपने भतीजे माधवप्रसादजी पर छोड़ दिया। इस तरह लक्ष्मीनिवासजी को उन सारे स्कूलों की जिम्मेदारी सौंपी गयी जो हायर सैकेंडरी तक शिक्षा देते थे। कृष्णकुमारजी को बी० आई० टी० एस० और बसंतकुमारजी को बिड़ला पब्लिक स्कूल का उत्तरदायित्व सौंपा गया। माधवप्रसादजी को सारी संस्थाओं के आर्थिक प्रबंध का भार दिया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में 'बिड़ला विद्या विहार' में इजीनियरिंग कालेज की स्थापना हुई। सन उन्नीस सौ बयालीस में बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट ने कई प्रकार के तकनीकी कार्यकर्ता तैयार करने की सरकारी योजना, घनश्यामदासजी के मित्र शिक्षा शास्त्री तथा चीफ जस्टिस फेडेरल कोर्टमारिस ग्वायर तथा जान सार्जेंट, जो भारत सरकार के शिक्षा सचिव थे, के सुझाव पर स्वीकार कर ली। उन दिनों डब्ल्यू० डब्ल्यू० वुड बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट के आर्किटेक्ट थे और साथ ही दिल्ली पालिटेक-नीक के प्रधानाचार्य भी। उन्होंने ही 'बिड़ला विद्या विहार' योजना का नक्शा तैयार किया, जिसमें विज्ञान, कला और इंजीनियरिंग कालेजों, म्यूजियम, पुस्तकालय, प्रयोगशालाओं तथा सभी छात्रावासों की योजना सम्मिलित थी। इस कार्य को शीघ्र संपन्न कराने के लिए घनश्यामदासजी ने ट्रस्ट के प्रमुख कार्यकर्त्ता शुकदेव पांडेजी को सहायता के लिए पिलानी भेज दिया।

बिड़ला इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी एंड साइंस की स्थापना करते समय इसके संस्थापक घनश्यामदास बिड़ला का स्वप्न था, तकनीकी शिक्षा, विज्ञान, कला, उद्योग, व्यवसाय और प्रशासन के क्षेत्र में प्रशिक्षण और अनुसंधान का विकास करके उन विचारों, पद्धतियों, तकनीकों और उनसे संबद्ध ज्ञान को जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों में उपयोग करना, ताकि भारत की भौतिक और औद्योगिक दोनों प्रकार की प्रगति हो सके।[१३२]

इस संस्थान की स्थापना घनश्यामदासजी ने मेसाच्यूसेट्स इंस्टीट्यूट आफ टेक्ना-लाजी से प्रेरणा लेकर की थी। उनका संकल्प था कि विज्ञान और टेक्नालाजी के क्षेत्र में जो सम्मान एम० आई० टी० को अमेरिका में प्राप्त है, वही सम्मान भारत में बी० आई० टी० एस० को प्राप्त हो। आज बी० आई० टी० एस० की गणना भारत सरकार के पांचों आई० आई० टी० के साथ की जाती है। उसका भी अपना एक स्वतंत्र स्वरूप है। यहां पर विज्ञान और टेक्नालाजी की सर्वोच्च शिक्षा दी जाती

१३२. बी. आई. टी. एस. का स्थापना संदेश

है। साथ ही इन क्षेत्रों में अनुसंधान की भी व्यवस्था है। यहां के उत्तीर्ण छात्र उद्योग और विज्ञान-क्षेत्र में कुशल प्रबंधक भी बनते हैं।

इस संस्थान को सर्वांगीण बनाने के लिए घनश्यामदासजी ने इसके साथ केंद्रीय संग्रहालय, सेंट्रल इलैक्ट्रानिक इंजीनियरिंग इंस्टीट्यूट, केंद्रीय पुस्तकालय और शारदा-पीठ का निर्माण कराया।

सन उन्नीस सौ छप्पन में जब प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भारतवर्ष को विज्ञान अनुसंधानशालाओं से समृद्ध करने की घोषणा की, तब घनश्यामदासजी ने पिलानी में एक संस्थान खोलने का सुझाव उन्हें दिया। इसके लिए बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट ने इक्कीस लाख रुपये अनावर्तक तथा पच्चीस हजार रुपये प्रतिवर्ष, पांच वर्ष के लिए आवर्तक रूप से देने का वचन दिया। पिलानी की शिक्षण संस्थाओं को पंडित नेहरू राष्ट्रीय संस्थान मानते थे, अतः उन्होंने घनश्यामदासजी का सुझाव स्वीकार कर लिया। इसके फलस्वरूप एक भव्य संस्थान की स्थापना हुई।

बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट के निर्माता बराबर इस बात पर बल देते रहे हैं कि विज्ञान और टेक्नालाजी के छात्र अपनी संस्कृति एवं महापुरुषों के आदर्श जीवन से अनभिज्ञ न रहें। वे चाहते थे कि छात्रों के व्यक्तित्व का प्रस्फुटन एक आयामी न होकर बहुआयामी हो।

पश्चिम के विकसित देशों की यात्रा करते हुए घनश्यामदासजी को भारत में विज्ञान और टेक्नालाजी की उच्च शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की प्रेरणा तो मिली थी, परंतु उन्होंने यह भी देखा था कि पश्चिम का मनुष्य यंत्रीकरण के कारण अपनी अस्मिता से कटता और अलग होता जा रहा है। इस कारण भौतिक रूप से समृद्ध होते हुए भी वह एक आंतरिक रिक्तता अनुभव करता है। उसके जीवन में सुख-शांति का अभाव है।

घनश्यामदासजी को लगा कि मशीन अंततोगत्वा मनुष्य का भी यंत्र बना देती है, जिसे मार्क्स ने 'एलिनेशन' कहा है। भारतवर्ष में घनश्यामदासजी को इस समस्या का हल गांधी-दर्शन में मिल चुका था। उन्होंने समझ लिया था कि यंत्रीकरण के दोषों से तभी बचा जा सकता है, जब वैज्ञानिक और टेक्नालाजिस्ट अपनी अस्मिता के माध्यम से कला, साहित्य और आध्यात्मिकता से जुड़े रहेंगे। इसीलिए घनश्यामदासजी ने ऐसी उच्च शिक्षा संस्थाओं को भी कला, साहित्य, जीवन और अध्यात्म, सभी से जोड़कर रखने का सार्थक प्रयास किया।

पिलानी विद्या विहार में निर्मित शारदापीठ इसी का जीवंत प्रतीक है । इसे सीधे सरस्वती मंदिर न कहकर शारदापीठ क्यों कहा गया, इसी में घनश्यामदासजी की दृष्टि का मर्म छिपा हुआ है । सरस्वती विद्या, बुद्धि एवं ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी हैं, वे अध्यात्म के साथ ज्ञान की शक्ति हैं । उनका मंदिर साधना का स्थल है, कर्म-कांड का नहीं । इसीलिए इसे मंदिर न कहकर पीठ कहा गया है ।

अन्य मंदिरों की अपेक्षा घनश्यामदासजी ने शारदापीठ के निर्माण में अधिक ध्यान दिया है । इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने विश्वासपात्र दुर्गाप्रसाद मंडेलिया को सन उन्नीस सौ पचपन में खजुराहो के मंदिर को देखने के लिए भेजा ।

इंजीनियरों और कारीगरों का यह मत था कि खजुराहो के कंदरिया महादेव मंदिर की अनुकृति बनाना संभव नहीं है, किंतु प्रयत्न करने पर यह काम असंभव भी नहीं है। ये दोनों मंदिर दसवीं शती में चंदेल राजाओं ने बनवाये थे और ये अपनी कला के लिए विश्वविख्यात हैं। अंत में कई माडल बनवाये गये और अपने पिता बलदेवदास-जी से परामर्श कर एक माडल पास कर दिया गया। कंदरियां महादेव मंदिर के आधार पर ही पिलानी में मंदिर बनाने का निश्चय कर लिया गया ।

अब प्रश्न यह था कि इस मंदिर में किस देवी या देवता की मूर्ति स्थापित की जाये। पुरानी पिलानी से लगा हुआ महाविद्यालय का एक नया नगर तब तक बस चुका था । वहां केवल विद्या का ही वातावरण था, अतः घनश्यामदासजी ने यह तय किया कि इस मंदिर में अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की मूर्ति ही प्रतिष्ठित की जाये। मंदिर को विद्यालय के मुख्य भवन के सामने इस प्रकार बनाने का निश्चय किया गया कि महाविद्यालय सभागार के मंच के केंद्र के ठीक सामने से भगवती सरस्वती की मूर्ति के दर्शन हो सकें। राजस्थान में सरस्वती की जो पुरानी मूर्तियां अब तक मिली हैं वे वीणाधारिणी हैं और अधिकांश खड़ी हुई मुद्रा में हैं। वैसी ही मूर्ति बनाने का निश्चय किया गया । उसके निर्माण का दायित्व लक्ष्मीनिवासजी को सौंपा गया । उन्होंने कलकत्ता के प्रसिद्ध मूर्तिकार श्रीपाल से उसका निर्माण कराया ।

बीस जनवरी उन्नीस सौ छप्पन को बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट के तत्कालीन सचिव और उपकुलपति श्री शुकदेव पांडे ने शिलान्यास से पहले विधिवत पूजा की । उन्तीस फरवरी उन्नीस सौ छप्पन को भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री राधाकृष्णन् ने उसकी आधारशिला रखी । श्री एच० सी० लड्ढा की देखरेख में प्रसिद्ध शिल्पी, मकराना के गुलामा फरीदी ने चार सौ दस कारीगरों की मदद से चार साल के

निर्धारित समय में इसे पूरा कर दिया। श्री मोरारजी देसाई ने छः फरवरी उन्नीस सौ साठ को इसका उद्घाटन किया। आचार्य विनोबा भावे के सुझाव के अनुसार इस सारे परिसर का नाम 'शारदीय पीठ' रखा गया।

पिलानी के इस शारदापीठ में मंदिर-शिल्प शास्त्र के अनुसार मंदिर की मंडोवर, महामंडप, अर्थमंडप और प्रवेश मंडप की बाहरी दीवारों पर नाना प्रकार के अलंकरण, देवी-देवताओं, अवतारों, पौराणिक व्यक्तियों की मूर्तियां अंकित की जानी चाहिएं। यही नहीं, इनमें कुछ दृश्य सांसारिक भोग-विलास के होने चाहिए। किंतु घनश्यामदासजी की कल्पना के शारदापीठ में इनका स्थान नहीं था। मंडोवर की तीनों दीवारों पर मूर्तियों की तीन पट्टियां हैं। ऊपर और नीचे की पट्टियों में देवी-देवताओं और देवांगनाओं की मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां खजुराहो की मूर्तियों की अनुकृति हैं। हिंदू धार्मिक साहित्य में वर्णित सभी देवी-देवताओं जैसे—ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, इंद्र, सूर्य, यम, कुबेर, वरुण, अग्नि आदि के अतिरिक्त नवग्रह और मातृकाओं की भी मूर्तियां स्थापित हैं। यक्ष, गंधर्व, विद्याधर, अप्सराओं और देवांगनाओं की मूर्तियों को भी उचित स्थान दिया गया है। विष्णु के अवतारों को अंकित किया गया है। शिव और विष्णु के अनेक रूपों की प्रतिमाएं इस मंदिर में उकेरी गयी हैं। इसी प्रकार दुर्गा के भी अनेक रूपों के दर्शन इस मंदिर में हैं।

इस मंदिर की मूर्तियों की दो विशेषताएं उल्लेखनीय हैं। एक यह कि इनमें अनेक पौराणिक कथाओं और आख्यानों को चित्रों के रूप में दीवारों पर उत्कीर्ण किया गया है। इन कथाओं को दृश्य-रूप में देखने से सामान्य जनता और विद्यार्थियों को अपनी धार्मिक कथाओं का ज्ञान ही नहीं हो जाता, बल्कि उनका प्रभाव चिरस्थायी हो जाता है। जो कथाएं चित्रित की गयी हैं, वे देखनेवालों में कर्त्तव्य-परायणता, दृढ़-संकल्प और तपश्चर्या की भावनाओं को विकसित करती हैं। भित्ति-चित्रों की प्रेरणा घनश्यामदासजी को पिलानी-स्थित अपने पितामह सेठ शिवनारायणजी की बनवायी हुई अपनी पैतृक हवेली से मिली थी। हवेली में उनके पिता स्वनामधन्य राजा बलदेवदासजी ने अपना कर्मजीवन बिताया था। इसी हवेली में उनके चारों पुत्रों, जुगलकिशोरजी, रामेश्वरदासजी, घनश्यामदासजी और ब्रजमोहनजी ने जन्म लिया था। जिस प्रकार अपने बचपन में घनश्यामदासजी ने पैतृक हवेली की चित्रित दीवारों से अपने चरित्र-निर्माण के गहरे संस्कार पाये थे, उसी प्रकार वे चाहते थे कि महाविद्यालय में स्थित शारदापीठ की मूर्तियों से वहां के विद्यार्थी भारतीय संस्कृति, इतिहास और पुराण

की शिक्षा--दृश्यों के माध्यम से ग्रहण करके अपना चरित्र बनाएं।

घनश्यामदासजी का विश्वास था कि भारतीय धर्म और संस्कृति के आधार केवल देवी-देवता और अवतार ही नहीं हैं। बड़े-बड़े तपस्वियों, ऋषि-मुनियों, दार्शनिकों, विचारकों, ज्योतिषियों, वैद्यों, कवियों आदि ने भी यहां की संस्कृति के विकास में योगदान दिया है। इससे आगे दूरदर्शी घनश्यामदासजी ने निश्चय किया कि भारत के प्राचीन और अर्वाचीन महात्माओं, मनीषियों और महापुरुषों के अतिरिक्त विश्व के कुछ ऐसे महान व्यक्तियों की भी मूर्तियां लगायी जाएं, जिन्होंने किसी भी क्षेत्र में मानवता का महत्त्वपूर्ण उपकार किया है--जैसे वेदव्यास, बृहस्पति, मनु, वाल्मीकि, पाणिनी, भास्कराचार्य, धन्वंतरि, कालिदास, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, चैतन्य, संत तुकाराम, गुरु नानक, तुलसीदास, मीरा, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, रवींद्र नाथ ठाकुर, बुद्ध, महात्मा गांधी, महावीर, जरथुष्ट्र, आर्कमिडीज, गैलेलियो, न्यूटन, लुई पास्चर, मैडम क्यूरी, टामस एडीसन, आइन्स्टाइन, सी० वी० रमण, अब्राहम लिंकन, मार्क्स, लेनिन, कैनेडी आदि।

शारदापीठ की एक विशेषता यह भी है कि यह देश में संपूर्णतया संगमरमर का बना पहला मंदिर है। इसके पहले प्राचीन या आधुनिक नागर शैली के जो भी मंदिर बने वे आग्नेय या बलुहे पत्थर के ही बने। घनश्यामदासजी की दृष्टि में शिक्षा के 'उद्यम' का महत्त्व उनके दूसरे उद्योगों से कहीं ज्यादा था। इसीलिए उन्होंने शिक्षा को हमेशा निर्बाध प्रोत्साहन दिया और उसकी उन्नति के लिए मुक्तहस्त से दान दिया।

पिलानी की ही नहीं, बाहर की भी अनेक संस्थाएं घनश्यामदासजी की इसी दानशीलता से पनपीं और बढ़ीं। बिड़ला शिक्षा संस्थान देश-शिक्षा के प्रचार-प्रसार का अमर आलेख है। वह इस बात का साक्षी भी है कि गांधीजी के 'संपत्ति के धरोहर-धारी' सिद्धांत की शिक्षा घनश्यामदासजी ने पूरी गहराई से हृदयंगम की है।

ब्रिटिश शासनकाल के शोषण और अत्याचार के बोझिल वातावरण में भी भारत में आधुनिक पूंजीवाद के पहिये--व्यापार और उद्योग--धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। उस समय जूट का काम करनेवाले घनश्यामदासजी इस बात को ध्यान से देख रहे थे। उन्होंने अनुभव किया कि भारत की आत्मशक्ति को कोई भी शोषण और अत्याचार से नष्ट नहीं कर सकता। इंग्लैंड की राउंड टेबल कांफ्रेंस में भाग लेने जब घनश्यामदासजी गये थे तो वहां के अनेक प्रमुख व्यापारियों और उद्योगपतियों से वे

मिले थे। उसी ने घनश्यामदासजी को यह अनुभव करने का अवसर दिया कि भारतवर्ष में औपनिवेशिक पिछड़ेपन के बावजूद आधुनिकता के बीज अंकुरित हो रहे हैं। स्वतंत्रता-संग्राम में महात्मा गांधी और अनेक नेताओं के साथ कार्य करते हुए घनश्यामदासजी ने स्वाधीनता के समय यह देख लिया था कि अन्य उपनिवेशों की तुलना में भारत सबसे उन्नत देश है। उसकी स्वाधीनता शांतिपूर्ण ढंग से आयी है। इस कारण यहां चीन जैसी औद्योगिक क्रांति संभव नहीं हुई। चीन एकदम से ही बांध तोड़कर समाजवाद की नयी राह पर चल पड़ा। लेकिन भारतवर्ष शासक देश का एक बौद्धिक उपग्रह बना रहा। साथ ही आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में उससे अलग होने के लिए छटपटाता भी रहा। यह छटपटाहट इसलिए थी कि भारत आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपने लिए नये आधार की तलाश में था। राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी थी, लेकिन आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति अभी शेष थी।

सन उन्नीस सौ सैंतालीस के बाद घनश्यामदासजी को दो बातें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लगीं। उनमें से एक थी——उत्पादन-कार्य में वृद्धि। अभी तक उत्पादन के लिए जो कच्चा माल उपयोग किया जाता था, वह प्रकृति पर आधारित था। यदि वर्षा न हो तो सूखा पड़ जाता। बंगाल में सूखा पड़ा था और दुर्भिक्ष की स्थिति पैदा हो गयी थी। "हम विदेशों से बड़ी मात्रा में खाद्यान्न का आयात कर रहे थे, पर उसका मूल्य चुकाने के लिए न तो हम निर्यात की सामग्री ही पर्याप्त मात्रा में तैयार कर रहे थे और न हमें ऐसे बाजार ही सुलभ थे, जिनमें हम अपने देश में तैयार की गयी निर्यात की सामग्री को बेच पाते। फलस्वरूप हमें अपने आयात की कीमत चुकाने के लिए पाउंड पावने की अपनी संचित निधि को बड़ी तेजी के साथ खर्च करना पड़ रहा था।"१३३

घनश्यामदासजी के लिए दूसरी महत्त्वपूर्ण बात थी——स्वाधीन भारत को उद्योग-पथ पर बढ़ाने के लिए यहां भारी मात्रा में मशीनें लगाना। इसके लिए देश में पर्याप्त पूंजी उपलब्ध होने के साधन नहीं थे, और यह स्पष्ट था कि पूंजी बाहर से मंगानी होगी। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के नये उत्साह में आकर भारतीय नेताओं ने अदूरदर्शिता के ऐसे काम किये, जिससे देशी-विदेशी पूंजी, दोनों ही सशंकित हो गयी। भारतीय नेता अनेक दिशाओं में ब्रिटेन की 'मजदूर सरकार' का अनुसरण करने लगे। पर बाद में जो स्थिति सामने आयी, उससे पता चला कि उन्होंने सरकार की आर्थिक सफलताओं का मूल्य बहुत आंका था। ब्रिटेन को जो कीमत चुकानी पड़ी, उसे भारत के नेताओं ने बहुत कम आंका था।

१३३. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १३३

भारत के स्वाधीन हो जाने के बाद घनश्यामदासजी का भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के आयोजन में पूरे संकल्प और उत्साह से जुट जाना स्वाभाविक ही था। परिस्थितियां लेकिन विचित्र बनीं। महात्मा गांधी घनश्यामदासजी पर अटूट विश्वास करते थे। इस विश्वासपात्रता की सिद्धि के लिए घनश्यामदासजी ने कुछ भी उठा नहीं रखा। अब वे जीवित नहीं थे। उनके सामने केवल जवाहरलाल नेहरू थे जो स्वतंत्र भारत के प्रधानमंत्री ही नहीं, बल्कि राष्ट्र-नायक भी थे। सरदार पटेल की प्रेरणा अब भी उनका संबल थी।

घनश्यामदासजी की मनःस्थिति भी इस समय बहुत विचित्र थी। द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हुआ था और उद्योग क्षेत्र में लोग चाहने लगे थे कि कम-से-कम परिश्रम करके अधिक-से-अधिक धन बटोर लिया जाये। काले धन की छाप बाजार और समाज पर पड़ने लगी थी। लोग उद्योग की जगह 'फाटका', मिलावट और कालाबाजारी आदि से धन कमाने लगे थे। घनश्यामदासजी को यह अच्छा नहीं लग रहा था।

यह भी एक विचित्र संयोग था कि जवाहरलाल नेहरू उस समय समाजवाद की चमक-दमक और तेजी से आकृष्ट हो रहे थे। उनका पूरा ध्यान रूस और समाजवादी देशों की क्रांतिकारी प्रगति की ओर था।

घनश्यामदासजी तेजी से अपने उद्योगों का विकास कर रहे थे। इसके पीछे उनकी भावना थी कि देश का तीव्र गति से औद्योगिक विकास हो और जनता को रोजगार के अधिक से अधिक अवसर मिलें। देश की आर्थिक विकास संबंधी प्रक्रिया में यद्यपि पंडितजी और घनश्यामदासजी का कुछ मतभेद था, लेकिन अधिकांश मामलों में दोनों के विचारों में साम्य था। घनश्यामदासजी पिछले बीस वर्षों से जवाहरलालजी को जानते थे और उनका आदर करते थे। जवाहरलालजी जानते थे कि घनश्यामदासजी गांधीजी के कितने निकट थे, इसलिए वे घनश्यामदासजी को केवल एक उद्योगपति के रूप में ही नहीं मानते थे बल्कि उनको उच्च-स्तरीय राष्ट्रवादी समझते थे। संभवतः यही कारण था कि युद्ध के दिनों में जब पैट्रोल की बेहद कमी थी तब जवाहरलालजी ने घनश्यामदासजी को लिखा था और सलाह मांगी थी कि इस कमी को दूर करने के लिए क्या किया जा सकता है ? घनश्यामदासजी ने पंडितजी को उनकी इच्छानुसार दो साइकिलें भिजवायीं। पहले ये साइकिलें बिड़ला फैक्टरी में ही बनी थीं, जैसा कि इस पुस्तक में पहले लिखा गया है। घनश्यामदासजी, जवाहरलालजी और उनके पिता पं० मोतीलालजी—दोनों को बहुत अच्छी तरह जानते थे। एक बार जब घनश्याम-

दासजी अपने पिताजी से मिलने वाराणसी गये तो संगम में स्नान करने के लिए वह इलाहाबाद भी गये। इलाहाबाद से वाराणसी लौटते समय, इलाहाबाद से थोड़ी दूर बाद ही, उनकी कार खराब हो गयी। ड्राइवर ने सुधारने की बहुत कोशिश की, लाकन कार ठीक नहीं हुई। किसी तरह घनश्यामदासजी इलाहाबाद पहुंच गये। वे सीधे आनंद भवन गये और जवाहरलालजी को अपने आगमन की खबर भिजवायी। घनश्यामदासजी के अचानक वहां पहुंचने से पंडितजी को आश्चर्य हुआ। वे तुरंत उनसे मिलने के लिए बाहर आये। तब घनश्यामदासजी ने कार के खराब होने की घटना बतायी और उनसे निवेदन किया कि वे अपनी कार दे दें ताकि उससे वाराणसी जाया जा सके। पंडितजी ने तुरंत उनको अपनी कार दे दी।

सरदार पटेल की मृत्यु के बाद तो घनश्यामदासजी पंडितजी के और भी नजदीक आ गये। कुछ ही समय बाद पंडितजी से उनकी इतनी आत्मीयता हो गयी कि उनके आमंत्रण पर पंडितजी ने तीन बार पिलानी की यात्राएं कीं—पहली यात्रा सन उन्नीस सौ पचास में, दूसरी सन उन्नीस सौ तिरेपन में और तीसरी यात्रा सन उन्नीस सौ इकसठ में।

घनश्यामदासजी के लिए राष्ट्रहित सर्वोपरि था। इसलिए राष्ट्र-निर्माण में उनका प्रधानमंत्री के साथ पूर्ण सहयोग था, यद्यपि सार्वजनिक प्रतिष्ठानों की सफलता के बारे में उन्हें संदेह था। घनश्यामदासजी की बड़े-बड़े राजनेताओं, राजनयिकों, उद्योगपतियों, अर्थ-शास्त्रियों और वित्त प्रबंधकों से घनिष्ठता थी। उनका व्यक्तित्व इतना बड़ा था कि वह सहज ही पश्चिम के उद्योगपतियों के विश्वासपात्र बन गये। घनश्यामदासजी ने अपने व्यक्तित्व के इस पक्ष को राष्ट्रहित के लिए प्रधानमंत्री के समक्ष प्रस्तुत किया।

"ब्रिटेन में हमारी स्थिति को ज्यादा गलत समझा जा रहा था। अमेरिका में न तो हमारी स्थिति को ठीक-ठीक समझा जा रहा था और न गलत ही। कुछ इने-गिने राजनेताओं को छोड़कर बाकी अमेरिकियों की हमारी स्थिति की ओर उदासीनता मात्र थी। उन राजनेताओं का हमारी स्थिति से, भौगोलिक और नैतिक दृष्टि से केवल इतना ही अनुराग था कि हम साम्यवाद से मोर्चा लें।"[१३४]

इंग्लैंड में घनश्यामदासजी को चर्चिल से लंबी बातचीत करने का अवसर मिला। घनश्यामदासजी ने पाया कि उन्हें भारत के बारे में जितनी गलत भ्रांतियां पहले थीं,

---

१३४. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ ४४६

उतनी अब भी हैं।

"मैंने चर्चिल को बताया कि अब भारत में शांति बिराज रही है और जो अंग्रेज हाल में वहां गये हैं, उनका कहना है कि दुनिया का कोई भी मुल्क आज भारत जितना शांत नहीं है। पंडित नेहरू और सरदार पटेल बहुत अच्छी तरह काम चला रहे हैं। हम साम्यवाद की बाढ़ को रोक रहे हैं, पर हमें लोगों की हालत को सुधारना है। हमें दो चीजों की दरकार है। पहली, सशक्त रक्षा-व्यवस्था और दूसरी वेगशील औद्योगीकरण।··· हमारी सबसे बड़ी कमजोरी हमारी दरिद्रता है, जिसे हम थोड़े समय में दूर करना चाहते हैं और यदि हम अपने लोगों का स्तर ऊंचा न उठा पाये, तो साम्यवाद की बाढ़ किसी के रोके न रुकेगी।"१३५

इस समय घनश्यामदासजी के पत्र-व्यवहार में बापू का रिक्त स्थान सरदार पटेल ने ले लिया था। बापू के जीवनकाल में घनश्यामदासजी जिस तरह उनसे राजनीति की समस्याओं पर विस्तार से विचार-विनिमय करते थे, अब वैसा ही सरदार पटेल से करने लगे थे। इंग्लैंड की उस यात्रा के तमाम ब्यौरे वे सरदार पटेल को देते रहे। "मैंने चर्चिल से पूछा कि श्री एंथनी भारत के क्या संस्मरण लाये हैं? उन्होंने कहा, 'उन्हें बड़ी खुशी हुई। उन्होंने आपके साथ हुई बातचीत का मुझसे जिक्र किया था।' तब उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या नेहरू राष्ट्रमंडल के विचार को मनवा सकेंगे? मैंने कहा, 'मुझे इसमें कोई शक नहीं है। समाजवादी बहुत शक्तिशाली नहीं हैं। साम्यवादी छिपे हुए हैं।··· ब्रिटेन को और किसी देश की अपेक्षा हमारी सहायता अधिक करनी चाहिए।"१३६

इंग्लैंड की उस यात्रा में छः मई उन्नीस सौ उनचास को घनश्यामदासजी ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एंथनी इंडेन से आधे घंटे के लिए मिले। उन्होंने घनश्यामदासजी को बताया कि जब दिल्ली में वह सरदार पटेल के यहां चाय पर थे तो सरदार पटेल ने उनसे कहा था कि अपने संविधान की वर्तमान स्थिति को कायम रखते हुए वे राष्ट्रमंडल में बने रहने को तैयार होंगे।

घनश्यामदासजी ने एंथनी इंडेन से इस विषय पर भी चर्चा की कि भारत को सैनिक और औद्योगिक दृष्टि से मजबूत बनाने की जरूरत है। ब्रिटेन को इस दिशा में भारत को सहयोग देना चाहिए। इंडेन ने कहा कि वह सैनिक सामग्री के बारे में

१३५. सरदार पटेल के नाम इंग्लैंड से घनश्यामदासजी का पत्र
१३६. वही

लार्ड एलेक्जेंडर से बात करेंगे और उद्योग के बारे में ब्रिटिश पूंजीपतियों से।

लंदन से घनश्यामदासजी मई उन्नीस सौ उनचास के अंत तक अमरीका गये। अमरीका से लंदन वापस लौटने पर घनश्यामदासजी ने ग्यारह जुलाई उन्नीस सौ उनचास को सरदार पटेल को लिखा, "अब तक मैं यहां प्रधानमंत्री श्री एलेक्जेंडर, श्री बेविन, श्री नोएल बेकर, सर जान एंडरसन और चर्चिल से मिल चुका हूं। इनमें से कुछ से दोबारा और दूसरों से आगामी सप्ताह में मिलने की आशा है। क्रिप्स से एक-दो दिन में मिलने वाला हूं।"[१३७]

चौदह जुलाई उन्नीस सौ उनचास को घनश्यामदासजी लार्ड हेलीफैक्स और लंदन के 'इकोनामिस्ट' के संपादक श्री क्रोथर से मिले। घनश्यामदासजी ने अनुभव किया कि 'डेली टेलिग्राफ' और 'डेली एक्सप्रेस' इन दोनों समाचारपत्रों का रुख भारत के विरुद्ध ही है।

इस यात्रा के दौरान घनश्यामदासजी ब्रिटेन के महत्त्वपूर्ण लोगों के मन में भारत के प्रति सद्भावना जगाने में सफल हुए। उन्होंने अनुभव किया कि इन यात्राओं के फलस्वरूप स्वतंत्र भारत के प्रति इंग्लैंड की स्वाभाविक कटुता कम हो गयी है।

सन उन्नीस सौ पचास में चीन की 'लाल क्रांति' सफल हुई और वहां साम्यवादी शासन प्रणाली चल पड़ी। इस सफलता के बाद, पांचवें दशक में संसार के नव-स्वाधीनता प्राप्त अनेक देशों में साम्यवाद का सम्मोहन छाने लगा था। विश्व की कुछ महाशक्तियों को ऐसा लगने लगा कि भारत भी धीरे-धीरे इस सम्मोहन के जाल में फंस रहा है। इस कारण इंग्लैंड और अमेरिका जैसे विकसित देश, स्वतंत्र भारत को आर्थिक सहायता देने में हिचक रहे थे। देश के आर्थिक विकास में तेजी लाने के लिए विदेशी सहायता नितांत आवश्यक थी। देश में बड़े-बड़े कल-कारखाने लगाने के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता थी, जो इस सहायता से ही प्राप्त हो सकती थी।

घनश्यामदासजी इस बात के पक्ष में नहीं थे कि भारी वेतन देकर विदेशों से विशेषज्ञ बुलाए जाएं। उनकी मान्यता थी कि देश में ऐसे लोग उपलब्ध हैं जो यहां की परिस्थितियों से भली-भांति परिचित हैं। उन्हीं को ध्यान में रखते हुए बड़े उद्योग लगाये जा सकते हैं। इसी संदर्भ में आजादी से पहले सन उन्नीस सौ पैंतालीस में घनश्यामदासजी अमेरिका गये थे। उद्योग लगाने की दिशा में उनकी वह यात्रा बहुत महत्त्वपूर्ण थी। उस यात्रा के बारे में तब बहुत गलतफहमी हुई थी, यहां तक कि बापू को भी। तब उन्होंने बापू को लिखा, "इस यात्रा के बारे में आपको कुछ गलतफहमी

१३७. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ ४४८

तो अवश्य हुई है, इसलिए फिर से समझ लेना जरूरी है। जब आप जेल में थे, तब उस जमाने में तरह-तरह के विशेषज्ञ भारतवर्ष बुलाये जा रहे थे। विशेषज्ञों के अलावा राजर मिशन और ग्रेडी मिशन भी आये। तब मैंने खुलेआम वक्तव्य दिया था कि उत्पादन बढ़ाने का यह क्या वाहियात तरीका है कि बाहर से लोग बुलाए जाएं। अगर उत्पादन-शक्ति बढ़ानी है तो क्या हममें अक्ल नहीं है? हम क्या नहीं जानते कि उत्पादन-शक्ति कैसे बढ़ायी जा सकती है।"१३८

घनश्यामदासजी ने आगे गांधीजी से कहा था कि विदेशी भारतवर्ष में अपना माल बेचने के लिए हर वक्त तैयार बैठे हैं। "माल बेचने वाले तो यहां ही होटलों में भरे पड़े हैं और जिसको आर्डर देना है, वे देते भी हैं। अगर उत्पादन-शक्ति बढ़ाने के लिए किसी को नये कारखाने बैठाने हैं तो उसे बैठाने में अनुचित भी कुछ नहीं है। वह तो हमारे हित में है। आज चीजों का जो अकाल है, उससे निबटने के लिए उत्पादन-शक्ति को बढ़ाना तो आवश्यक है।"१३९

स्वतंत्रता के पश्चात् सन उन्नीस सौ इक्यावन की घनश्यामदासजी की यूरोप और अमरीका की यात्रा का अपना विशेष महत्त्व है। स्वतंत्रता से पहले उद्योग-व्यापार संबंधी अपनी विदेश यात्राओं के बारे में घनश्यामदासजी पत्रों के माध्यम से गांधीजी से निकट संपर्क बनाये रखते थे। उन्होंने प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के साथ वही परंपरा आगे बढ़ायी। अठारह सितंबर उन्नीस सौ इक्यावन को उन्होंने प्रधानमंत्री को एक पत्र लिखा, "मैं जल्दी ही यूरोप और अमेरिका जा रहा हूं। वहां मैं जिन लोगों से मिलूंगा उन लोगों को भारत की समस्याओं से अवगत कराऊंगा। कश्मीर तथा अन्य समस्याओं के बारे में वही बातें उन्हें समझाऊंगा, जो आप समय-समय पर कहते रहे हैं।"१४०

अमेरिका यात्रा में वे जिन महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से मिले, उनमें प्रमुख थे—विलियम जैक्सन जो अमरीकी राष्ट्रपति के विशेष सहायक थे और शर्मन ऐडम्स, जिनका राष्ट्रपति पर विशेष प्रभाव था। विलियम जैक्सन से उनकी बातचीत भारत को विदेशी मुद्रा देने के संबंध में हुई। इनके अतिरिक्त वे अमेरिका के प्रमुख उद्योगपति, बैंकर, फाइनेंसर्स आयल स्टील और शिपिंग मैगनेट से भी मिले। हैवी इंजीनियरिंग और इलैक्ट्रिक गुड्स के उद्योगपतियों से मिलकर भी उन्होंने विदेशी मुद्रा के लिए

१३८. बापू की प्रेम प्रसादी, खंड ४, पृष्ठ ४०९
१३९. वही, पृष्ठ ४१०
१४०. वही, पृष्ठ ४१०

बातचीत की। इस संबंध में समुचित वातावरण बनाने के लिए उन्होंने वहां के पत्रों जैसे 'लाइफ', 'टाइम', 'फारचून', 'हेरल्ड ट्रिब्यून' के मालिकों और संपादकों से संपर्क किया। उन्हें खाने पर बुलाया, ताकि वे भारत में रुचि लें और उनमें भारत के प्रति सद्भावना जगे। उस समय पूंजीवाद और साम्यवाद को लेकर स्वतंत्र भारत के संबंध में जो तरह-तरह की भ्रांतियां इन देशों में फैली हुई थीं, घनश्यामदासजी ने उन्हें दूर करने की भरसक कोशिश की। इस सबके विषय में वे व्यक्तिगत अथवा गोपनीय पत्र पं० जवाहरलालजी नेहरू के विशेष सहायक, एम० ओ० मथाई को लिखते रहे।

सन उन्नीस सौ इक्यावन में जब प्रथम पंचवर्षीय योजना तैयार हुई, तब 'फिक्की' के मंच से घनश्यामदासजी ने उसके कई मुद्दों पर अपने विचार प्रकट किये। योजना आयोग के सुझाव पर सरकार ने लोकसभा में औद्योगिक विकास एवं नियमन (इंडस्ट्रीज डेवेलपमेंट एंड रेगूलेशन) बिल पारित करना चाहा। उस बिल के अनुसार कोई भी नया उद्योग केंद्रीय सरकार से लाइसेंस लिये बिना न तो खोला जा सकता था, न पुराने उद्योगों में कोई विस्तार किया जा सकता था। सरकार को उस समय 'रुग्ण' उद्योगों की जांच करने का भी अधिकार दिया गया था। फेडरेशन ने इस प्रावधान का विरोध किया, परंतु बिल पास होकर कानून बन गया। उस कानून के अंतर्गत उद्योगों के लिए एक केंद्रीय परामर्शदात्री परिषद गठित करने का प्रावधान किया गया। सरकार के अनुरोध पर फेडरेशन ने घनश्यामदास बिड़ला, कस्तूरभाई लालभाई और फेडरेशन के तत्कालीन अध्यक्ष एम० सी० कोठारी को उस परिषद में फेडरेशन का प्रतिनिधित्व करने के लिए मनोनीत किया।

उसी वर्ष फेडरेशन ने जब अपनी रजत जयंती मनायी तो घनश्यामदासजी ने एक महत्त्वपूर्ण वक्तव्य 'काम जो आगे है' के नाम से दिया। "यूरोपीय और अमेरिकी व्यापारी बहुत आगे की बात सोचते हैं। वे लंबे समय की योजनाएं तैयार करते हैं।··· उनका पहला लक्ष्य होता है व्यय घटाना और माल को सस्ते भाव पर बेचना। इस प्रकार उपभोक्ता का भी हित करना, क्योंकि वही सब तरह के व्यापार का मूलाधार है। इस नीति पर चलने के कारण ही अमेरिका इतना समृद्ध हो गया है। वहां की पूंजीवादी व्यवस्था ने अपने विरुद्ध पुराने और पिछड़े हुए मार्क्सवादियों द्वारा लगाये आरोपों को मिथ्या सिद्ध कर दिया है। क्या हम भी अपने देशवासियों के प्रति पाश्चात्य व्यापारियों की भांति उदार दृष्टिकोण रखने में समर्थ हैं? कुछ हद तक तो इसका उत्तर 'हां' में है। लेकिन हमें इस बात को प्रमाणित करना है कि पूंजीवाद भारत

के लिए वरदान-तुल्य है। जब तक देश में गरीबी बनी हुई है, तब तक हम किस मुंह से ऐसा दावा कर सकते हैं · · · असल में हम लोगों का मनोविज्ञान एक व्यापारी का है। हम अभी तक उद्योगपति का दृष्टिकोण अपने में नहीं ला पाये हैं, क्योंकि हमारी रुचि निर्माण करने में उतनी नहीं है, जितनी कि लाभ कमाने में। एक उद्योगपति के रूप में मैं अपने लंबे अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूं कि उत्पादन बढ़ाकर यदि उपभोक्ता को अधिक सस्ती कीमत पर माल दिया जा सके, तो उससे लाभ में भी कोई कमी नहीं होती। चीज अधिक बिकती है, इसलिए लाभ अधिक होता रहे। लाभ की दर कम हो सकती है, परंतु माल की अधिक खपत के कारण अंततः अधिक लाभ होता ही है और जनता की सेवा भी होती है।"१४१

उद्योगपति के स्वरूप की पहचान कराते हुए घनश्यामदासजी ने तीन बुनियादी बातें कही हैं—एकता, निर्माण और चरित्र। इन बुनियादी तथ्यों के बिना उद्योगपति न तो समाज में संगठन ला सकता है, न देश में समृद्धि ला सकता है और न लोगों के जीवन को सार्थक बना सकता है। वह सही अर्थ में उद्योगपति न बनकर केवल व्यापारी बनकर रह जाता है।

स्वतंत्रता के पहले से ही घनश्यामदासजी यह अनुभव करने लगे थे कि भारत में आर्थिक विकास और औद्योगिक उन्नति के लिए बैंकिंग क्षेत्र में विस्तार की आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से सन उन्नीस सौ बावन में घनश्यामदासजी ने यूनाइटेड कमर्शियल बैंक की स्थापना की। उसी वर्ष औद्योगिक क्षेत्र में की गयी महान सेवाओं के फलस्वरूप फेडरेशन आफ इंडियन चैंबर्स के वार्षिक समारोह में घनश्यामदासजी को 'यशस्कर सदस्य' चुनकर सम्मानित किया।

सन उन्नीस सौ तिरेपन में पिलानी में सेंट्रल इलेक्ट्रानिक्स इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट का शिलान्यास प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा किया गया। उस अवसर पर घनश्यामदासजी ने इंस्टीट्यूट को इक्कीस लाख रुपये अनावर्तक तथा बीस हजार रुपये प्रति पांच वर्ष के लिए देने का वचन दिया।

राष्ट्र के औद्योगिक विकास में इस्पात का कारखाना लगाने का महत्त्व घनश्यामदासजी भली-भांति जानते थे। "इस संबंध में उन्होंने कई बार विस्तार से योजनाएं बनायीं, देश-विदेश के लोगों से लिखा-पढ़ी की, किंतु सरकार से उन्हें इसके लिये अनुमति नहीं मिली१४२।" अनुमति न मिलने का कारण था प्रधानमंत्री जवाहर-

१४१. जवाहरलाल नेहरू को घनश्यामदासजी का निजी पत्र
१४२. फिक्की की रजत जयंती स्मारिका से

लाल नेहरू का समाजवाद की ओर झुकाव । समाजवाद में विश्वास करनेवाले नेहरूजी यह नीति बना चुके थे कि बुनियादी उद्योग केवल सार्वजनिक क्षेत्र में लगाये जाएंगे । इस संबंध में घनश्यामदासजी ने नेहरूजी के सचिव एम० ओ० मथाई को बीस अप्रैल उन्नीस सौ तिरेपन को एक पत्र लिखा, "मैं साठ वर्ष का हो गया हूं और मेरी यह इच्छा कतई नहीं है कि सिर्फ पैसा कमाने के उद्देश्य से नये धंधे शुरू करूं। ऐसे मामलों में अगर मैं दिलचस्पी ले सकता हूं तो केवल एक उद्देश्य से कि देश में उत्पादन बढ़े।"१४३

इस समय स्वतंत्र भारत की शासन-व्यवस्था से घनश्यामदासजी के मन में एक अजीब-सी बेचैनी भर रही थी। घनश्यामदासजी किसी 'वाद' में विश्वास नहीं रखते थे । उनकी मान्यता थी कि एक स्वतंत्र और विकासशील देश में सरकार को हर 'वाद' का मोह छोड़कर ऐसे व्यावहारिक काम करने चाहिए जिनसे राष्ट्र का कल्याण हो और समाज के हर स्तर में खुशहाली आये । घनश्यामदासजी की इन बातों की ओर उस समय की सरकार का ध्यान नहीं गया । वह समय था समाजवाद के प्रति एक स्वप्नाविष्ट दृष्टिकोण का ।

सरदार पटेल की मृत्यु के बाद पंद्रह दिसंबर उन्नीस सौ पचास को घनश्यामदासजी ने प्रधानमंत्री नेहरू के विशेष सहायक एम० ओ० मथाई को फोन किया कि वे पंडित नेहरू से मिलना चाहते हैं। वस्तुतः स्वतंत्र भारत के वित्त मंत्रालय ने उस वक्त उनके लिए अजब-सी परेशानियां खड़ी कर दी थीं। जो धन स्वतंत्रता-आंदोलन के दौरान घनश्यामदासजी ने अनुदान-स्वरूप कांग्रेस को दिया था, उस पर भी आय-कर लगा दिया गया था। यह सब सन उन्नीस सौ छियालीस में जब अंतरिम सरकार बनी तो तत्कालीन वित्त मंत्री लियाकत अली के कार्यकाल में शुरू किया गया था। अब सी० डी० देशमुख ने भी उसी का अनुसरण किया था । घनश्यामदासजी इस कारण बेहद दुखी थे । उन्होंने मथाई से कहा कि वे स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में पंडित नेहरू के बहुत करीब नहीं थे और न ही पंडितजी धन जमा करने के कार्य से कभी जुड़े थे ।

मथाई ने घनश्यामदासजी के स्वाभाविक दुख को अनुभव कर कहा, "आप मौलाना आजाद से मिल लें। फिर इस विषय में पंडितजी जरूर आपसे बात करेंगे।"

मौलाना आजाद ने पंडितजी से बातचीत की। उसके बाद पंडित नेहरू घनश्याम-

---

१४३. मरुभूमि का वह मंच : रामनिवास जाजू, पृष्ठ १८६

दासजी से मिले। इस भेंट का अच्छा असर हुआ और दोनों के बीच पत्राचार शुरू हुआ। पहले तो देशमुख अपनी बात पर डटे रहे, लेकिन जब पंडितजी ने उनसे कहा कि वह उन लोगों को दंड नहीं दे सकते, जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया है, तो वह निरुत्तर हो गये।

एम० ओ० मथाई ने लिखा है कि एक बार इलाहाबाद से लौटने के बाद नेहरूजी बहुत नाराज थे। श्रीमती इंदिरा गांधी से पता चला कि स्वराज भवन से जब कांग्रेस का दफ्तर दिल्ली आया तो स्वराज भवन को बुरी हालत में छोड़ा गया था। मथाई के अनुसार, "मैंने घनश्यामदासजी बिड़ला से बात की और कहा कि यह भवन, जिसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत बड़ा है, इसके लिए कुछ अवश्य किया जाना चाहिए। बिड़ला ने तुरंत एक लाख का चैक दे दिया। बिड़ला ने कस्तूरभाई लालभाई से भी इस कार्य के लिए पच्चीस हजार रुपये दिलवा दिये। परंतु जब दो लाख का खर्चा बैठा तो घनश्यामदासजी ने एक लाख का चैक और दे दिया। इस संदर्भ में, मैं यह भी कहना चाहूंगा कि जब तक मैं प्रधानमंत्री के कार्यालय में रहा, तब तक घनश्यामदास बिड़ला ने कभी उनसे किसी प्रकार की कृपा के लिए कोई बात नहीं की। बिड़ला बहुत ऊंचे व्यक्ति थे, जो प्रतिदान की आशा से कुछ नहीं करते थे।"१४४

ऐसी परिस्थिति में घनश्यामदासजी अपने में वह उत्साह नहीं पा रहे थे जो उनकी सहज प्रकृति में था। "इस ढलती उमर में आशावाद के बीच में मैं कभी-कभी संशयग्रस्त हो जाता हूं। शायद कठिनाइयों का तकमीना ज्यादा आंक बैठता हूं, यह भी संभव है।"१४५ उद्योग के क्षेत्र में आगे बढ़ने के प्रति जैसे वे उदासीन हो रहे थे। घनश्यामदासजी के कनिष्ठ पुत्र बसंतकुमारजी ने बताया कि घनश्यामदासजी की मानसिकता ऐसी हो गयी है कि उन्होंने निश्चय कर लिया है कि वे आठ-दस साल अब किसी उद्योग को और विकसित नहीं करेंगे। हुआ भी यही। इन वर्षों में औद्योगिक विकास बहुत कम हुआ।"१४६

इसी स्थिति में घनश्यामदासजी उन्नीस सौ चौवन के प्रारंभ में बसंतकुमारजी और सरलाजी के साथ अपने पिता राजा बलदेवदासजी के पास बनारस गये।

पिता ने पूछा, "घनश्याम, तुम अपना उद्योग क्यों नहीं बढ़ा रहे हो?"

घनश्यामदासजी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

---

१४४. एम. ओ. मथाई के नाम घनश्यामदासजी का पत्र
१४५. रिमैनीसेंस आफ दि नेहरू एज : एम. ओ. मथाई, पृष्ठ ११८
१४६. बसंतकुमारजी से साक्षात्कार

उस पर पिता ने फिर कहा, "उद्योग नहीं बढ़ाओगे तो समय से पिछड़ जाओगे। परिवार के लोगों की नजरों में तुम्हारा जो महत्त्व है, कम हो जायेगा। तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है, तुम अब भी इतने सक्रिय हो। ऐसी हालत में तुम्हारा यह कहना कि आगे अब उद्योग बढ़ाएंगे कृष्णकुमार और बसंतकुमार, यह बिलकुल ही गलत है। ये लोग अपने काम करेंगे अपनी जरूरतों के लिए। अपने लिए। तुम क्या करोगे ?"

घनश्यामदासजी अब भी निरुत्तर थे।

पिताजी ने आगे कहा, "देखो, बसंत काम करेगा अपने स्थान पर। माधव अपने स्थान पर। सब अपने-अपने स्थान पर काम करेंगे। तुम अपने स्थान पर काम करो। जब तक तुम्हारे पास बुद्धि, स्वास्थ्य और सोचने की शक्ति है, तब तक उन्हें काम में लाओ, उद्योग बढ़ाओ।"

बनारस में पिता से हुई यह भेंट घनश्यामदासजी के जीवन में एक नया मोड़ ले आयी। संकल्प और उत्साह के साथ सन उन्नीस सौ चौवन के मध्य में जर्मन बैंकों के चेयरमैन और प्रेसिडेंट से मिलने घनश्यामदासजी पूर्वी जर्मनी गये। वहां घनश्यामदासजी का इतना भव्य स्वागत हुआ कि हवाई अड्डे के एक कर्मचारी ने उनके सचिव राजकुमार गुप्त से पूछा, "मि० बिड़ला किसी देश के राजा या प्रधानमंत्री हैं क्या ?"१४७ किसी उद्योगपति का इतना भव्य स्वागत वहां नहीं हुआ था। इस यात्रा का उद्देश्य था समाजवादी देशों में बैंकों की कार्य-विधि का अध्ययन।

पूर्वी जर्मनी से लौटने के बाद पिता से प्राप्त प्रेरणा से उनके मन में, बापू की यादें फिर से ताजा हो गयीं। उन्हें लगा कि उनके पास बापू की जो स्मृतियां, सजीव संस्मरण और महत्त्वपूर्ण पत्र हैं, उनका संकलन करके आगे की पीढ़ियों के लिए छोड़ दिया जाये। इसके फलस्वरूप सन उन्नीस सौ पचपन में 'सस्ता साहित्य मंडल' से उन्होंने अपनी पुस्तक 'गांधीजी की छत्रछाया में' प्रकाशित करायी।

मार्च उन्नीस सौ छप्पन में घनश्यामदासजी यूरोप की यात्रा पर गये। भारत छोड़ते समय पिता के स्वास्थ्य की अवस्था चिंताजनक नहीं थी, लेकिन लंदन पहुंचते ही उन्हें उनकी मृत्यु का समाचार मिला। राजा बलदेवदासजी की मृत्यु की खबर सुनते ही पंडित जवाहरलाल नेहरू ने घनश्यामदासजी को अपना संवेदना संदेश भेजा। उसका उत्तर देते हुए घनश्यामदासजी ने चार अप्रैल उन्नीस सौ छप्पन को नेहरूजी को पत्र लिखा, "तिरानवे वर्ष की उम्र में भी मेरे पिता कर्मठ थे। उनके दान-पुण्य

१४७. नेहरूजी के नाम घनश्यामदासजी का पत्र

का तरीका परंपरागत था। वह लोगों को नियमित रूप से कपड़ा, भोजनादि सामग्री दान करते थे। ···वह कहा करते थे, 'जीवन में मर्यादा और सेवा ही महत्त्वपूर्ण है।···वह वर्तमान के प्रशंसक, भविष्य के प्रति आस्थावान और अतीत के प्रति श्रद्धालु थे।···पिता के निधन से मैंने एक ऐसा व्यक्ति खो दिया, जो मुझे अधिकाधिक सेवा करते रहने की सतत प्रेरणा देता था।···मृत्यु से थोड़ी देर पहले मेरे लिये उन्होंने संदेश दिया था, 'जब तक कार्य संपन्न न हो, लौटना नहीं'।"१४८

संकल्पवान घनश्यामदासजी के मानस पर पिता की मृत्यु ने एक अद्‌भुत प्रभाव डाला। पिता को अमरत्व प्रदान करने के लिए उन्हें अब और आकंठ कर्म में डूब जाना है।

अभी पिता के देहावसान की स्मृति ताजी ही थी कि समाचार मिला, बड़े जामाता बंशीधर डागा गंभीर रूप से अस्वस्थ हैं। सारे प्रयत्नों के बावजूद उन्हें नहीं बचाया जा सका। दिसंबर उन्नीस सौ छप्पन में केवल पैंतालीस वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया। यह खबर पाते ही घनश्यामदासजी तुरंत पुत्री को सांत्वना देने कलकत्ता पहुंचे। सबसे उन्होंने कहा कि ऐसा कुछ न करो, जिससे चंद्रकला का दुख बढ़े।

जब तक कलकत्ता रहे, चंद्रकलाजी को पास रखकर उसे तरह-तरह से सांत्वना देते रहे। कलकत्ता से बाहर जाते ही चौबीस दिसंबर उन्नीस सौ छप्पन को उन्होंने उसे पत्र लिखा, "अच्छे पुरुषों की मृत्यु केवल शरीर का नाश बताती है, पर उनकी धवल कीर्ति उन्हें अमरत्व देती है।···बंसी केवल शरीर से गया है, न आत्मा गयी है, न उसकी धवल कीर्ति।···रोने की गुंजायश नहीं है, क्योंकि यदि हम उसमें अमरत्व देखते हैं तो फिर आत्मवियोग नहीं है।"१४९

पिता की मृत्यु के समय आत्मा की अनश्वरता का जो बोध घनश्यामदासजी के मन में बहुत सजग हो आया था, जामाता की मृत्यु के बाद वही बोध और सशक्त हो उठा और एक कर्मयोगी की तरह वह फिर अपने कार्यों में संलग्न हो गये।

सन उन्नीस सौ सत्तावन का वर्ष घनश्यामदासजी के लिए सम्मान का वर्ष था। उसी साल, गणतंत्र दिवस पर, राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद ने घनश्यामदासजी को पद्म-विभूषण से सम्मानित करने की घोषणा की। पारिवारिक दृष्टि से भी यह वर्ष बहुत शुभ था। पौत्र सुदर्शन कुमार के बेटे के जन्म से वे प्रपितामह बन गये। दूसरे पौत्र

१४८. बसंतकुमारजी से साक्षात्कार
१४९. घनश्यामदास बिड़ला के पच्चीस वर्ष : आर. के. गुप्ता, पृष्ठ २२

आदित्य की उन्होंने सगाई कर दी, यद्यपि विवाह हुआ आदित्य का पढ़ाई समाप्त कर, मैसेचूसेट्स से लौटने के बाद ।

घनश्यामदासजी ने अपने जीवन को नियमों में बांध रखा था, नियमों के बाहुपाश में बंधकर ही उन्हें आनंद का अनुभव होता था । इसी प्रकाश में उन्होंने उद्योग और कर्म को मुक्ति के रूप में अनुभूत किया था । वे सदा उन लोगों की आलोचना करते थे जो कर्म को मुक्ति के विपरीत समझते हैं । वास्तव में घनश्यामदासजी के लिए कर्म ही मुक्ति थी ।

देश के गतिशील औद्योगीकरण के लिए सरकार के साथ मिलकर कैसे काम किया जाये, इस बात पर घनश्यामदासजी विशेष ध्यान देने लगे । पंचवर्षीय योजना को सफल कार्यरूप कैसे दिया जाये, इस पर भी वे सोचने लगे । अप्रैल उन्नीस सौ छप्पन में घनश्यामदासजी ने इंग्लैंड की यात्रा की । इस यात्रा के समय घनश्यामदासजी समाजवाद और पूंजीवाद के बीच संघर्ष की बात से चिंतित थे । इंग्लैंड में विभिन्न क्षेत्रों के अपने अनुभव से उन्हें लगा, "पूरे इंग्लैंड के मानस पर भारत में उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का भय छाया हुआ है ।"१५० ··· मथाई को उन्होंने लिखा कि "मेरे इस पत्र को कृष्ण मेनन और यदि सार्थक समझो तो पंडित नेहरू को भी दिखाना ।"१५१

तेरह जून उन्नीस सौ छप्पन को घनश्यामदासजी ने प्रधानमंत्री के विशेष सहायक एम० ओ० मथाई को एक और व्यक्तिगत पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कुछ ही समय पहले की गयी अमेरिका यात्रा के अनुभव के आधार पर बताया, "दि फार ईस्ट अमेरिकन काउंसिल आफ कामर्स एंड इंडस्ट्री व्यापारियों और उद्योगपतियों से मेलजोल बढ़ाने का एक अच्छा मंच है। 'इंडिया हाउस' में उन लोगों ने मुझे दोपहर के खाने पर बुलाया जहां सत्तर से ऊपर बड़े-बड़े उद्योगपति और व्यापारी तो थे ही, साथ-ही-साथ एक बहुत समझदार दर्शक समूह भी उपस्थित था, जो व्यस्त न्यूयार्क के लिए एक अप्रत्याशित बात थी । ये सारे-के-सारे भारत के विषय में जानने को आतुर थे ।

"राजनीतिक क्षेत्र में हेनरी कोबोटलाज, संयुक्त राष्ट्र में अमेरिका के राजदूत के अतिरिक्त छियानवे में से चौदह महत्त्वपूर्ण सेनेटर्स से मिला । वहां मुझसे यह बताने को कहा गया कि अमेरिका भारत को किस प्रकार सहायता कर सकता है ।"१५२

---

१५०. जवाहरलाल नेहरू को घनश्यामदासजी का निजी पत्र
१५१. चंद्रकला के नाम घनश्यामदासजी का पत्र
१५२. एम. ओ. मथाई को घनश्यामदासजी का पत्र

सन उन्नीस सौ छप्पन की यह अमेरिका यात्रा घनश्यामदासजी के लिए एक व्यक्तिगत विजय थी। इस यात्रा में वे शरमन, ऐडम्स, विलियम जैक्सन और जोसेफ डाज से मिले, जो अमेरिकी राष्ट्रपति के विशेष सहायक थे। ट्रेजेरी सेक्रेटरी जार्ज हंफ्री, कामर्स सेक्रेटरी सिनक्लेयर विल्कस, विदेश विभाग के अध्यक्ष जान हालिस्टर से भी वे मिले। विश्व बैंक के प्रेसिडेंट यूजीन ब्लैक से जब वे दोपहर के भोजन पर मिले तो भारत की पंचवर्षीय योजना और प्राइवेट सेक्टर की भूमिका पर बात-चीत की।

एम० ओ० मथाई को लिखे गये उसी पत्र में घनश्यामदासजी ने एक महत्त्वपूर्ण सूचना दी ताकि वह प्रधानमंत्री पंडित नेहरू तक पहुंच जाये, "अमेरिकी कहते हैं कि हमारी गुटनिरपेक्षता की बात वे समझते हैं, लेकिन रूस के प्रति भारत का पक्षपात उनकी समझ में नहीं आता है।"१५३

अमेरिका में घनश्यामदासजी ने राजनेता व शासक वर्ग, व्यापारी व उद्योगपति वर्ग, प्रेस और महत्त्वपूर्ण लोगों से मिलकर यह अनुभव किया कि भारत की स्थिति वहां का पूंजीपति वर्ग अवश्य समझता है, परंतु वहां के प्रेस का रुख भारत के अनुकूल नहीं है। उनकी यह धारणा दृढ़ हुई कि साम्यवाद की चुनौती का सामना करने का एक ही रास्ता है—देश को आर्थिक रूप से सुदृढ़ करना। उन्होंने अमेरिकी व्यवस्था को भी आगाह किया कि पाकिस्तान को सैनिक सहायता देना परोक्ष रूप से साम्यवाद को सहायता करना है।

'हमारा झुकाव रूस की ओर है'—अमेरिका में फैली इस भ्रांति को दूर करने के लिए घनश्यामदासजी ने वहां लोगों को बताया कि स्वाधीन भारत में जो तीन प्रमुख स्टील प्लांट लगाये गये हैं, उनमें से एक के लगाने में ब्रिटेन ने मदद की है, दूसरे के लगाने में जर्मनी ने और तीसरे के लगाने में रूस ने। इस तरह से तथ्यों को सामने रखकर घनश्यामदासजी ने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि हम सही अर्थों में गुटनिरपेक्ष हैं।

इस बार अमेरिका में रहते हुए घनश्यामदासजी बराबर अनुभव करते रहे कि भारत के आर्थिक-औद्योगिक विकास के लिए विदेशी मुद्रा की बहुत आवश्यकता है। विदेशी ऋण प्राप्त करने के उद्देश्य से इंटरनेशनल कोआपरेशन एंड एडमिन्स-ट्रेशन के निदेशक जान बी० हालिस्टर, प्रख्यात पूंजीपति राकफेलर, ट्रेजेरी के सचिव जार्ज हंफ्री आदि से मिले। उल्लेखनीय बात यह है कि ऋण प्राप्त करने के इन सारे

१५३. एम. ओ. मथाई को घनश्यामदासजी का निजी पत्र, २१ अप्रैल ५६

प्रयत्नों में कही भी घनश्यामदासजी को अपने निजी उद्योगों की चिंता नहीं थी। यह सब पूर्णतः राष्ट्रहित के लिए किया गया सार्थक प्रयत्न था।

इसी प्रसंग में थोड़े दिनों बाद ही, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू अमेरिका की यात्रा करने वाले थे। घनश्यामदासजी ने यह आवश्यक समझा कि उस क्षेत्र के कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों से उन्हें अवगत करा दें, ताकि एक बिलियन डालर का ऋण प्राप्त करने में प्रधानमंत्री सफल हो सकें। इस संबंध में अपनी भूमिका स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा, "मैं यथार्थवादी हूं। पंडितजी को ऐसा नहीं लगना चाहिए कि इस तरह भारत के लिए फारेन एक्सचेंज की बात पर मेरा जोर डालना मेरे सीमित दृष्टिकोण का परिचायक है। व्यावसायिक होने के नाते बहुत से अन्य क्षेत्रों में विचरने की योग्यता मुझमें नहीं है। लेकिन इसे मेरे विचारों की सीमा नहीं समझना चाहिए। यदि पंच-वर्षीय योजना को सफल बनाना है तो हमें उसी दिशा में ही सोचना होगा।"१५४

पूरी पूछताछ, खोजबीन और अध्ययन के बाद घनश्यामदासजी ने विदेशी ऋण प्राप्त करने के सात स्रोतों की ओर ध्यान दिलाया--विश्व बैंक, दि एक्सपोर्ट इंपोर्ट बैंक, दि इंटरनेशनल फाइनेंस कारपोरेशन, दि अमेरिकन ओवरसीज फाइनेंस कारपोरेशन, दि चेज बैंक, कुछ बीमा कंपनियां और अन्य बैंक। इस संबंध में घनश्याम-दासजी ने प्रधानमंत्री नेहरू का ध्यान तीन बातों की ओर आकृष्ट किया--लक्ष्य की स्पष्टता, उसे प्राप्त करने का संकल्प और ऋण की प्रकृति का ज्ञान।

सन उन्नीस सौ छप्पन में घनश्यामदासजी ने संसार के कई देशों की यात्रा की। प्रत्येक यात्रा के बारे में वे पंडित नेहरू को जानकारी देते रहे। इस तरह सन उन्नीस सौ पचपन से सन उन्नीस सौ सत्तावन तक उनका जो पत्रव्यवहार नेहरूजी से या एम० ओ० मथाई से हुआ, महत्त्वपूर्ण है।

सन उन्नीस सौ अठावन के अंत में घनश्यामदासजी ने प्रधानमंत्री नेहरू को एक व्यक्तिगत टिप्पणी भेजी, "हमारी द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता इन बातों पर निर्भर है :

(१) विदेशी मुद्रा की सुलभता,
(२) यातायात,
(३) तकनीकी शिक्षा प्राप्त लोगों की सुलभता,
(४) चुस्त शासनतंत्र, और
(५) जनता में क्रय-शक्ति की वृद्धि।"

१५४. एम. ओ. मथाई के नाम घनश्यामदासजी का निजी पत्र

उन्हीं दिनों पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत भारत के अनेक स्थानों पर बिजली-उत्पादन बढ़ाने के लिए कई उपाय किये जा रहे थे। उत्तरप्रदेश के एक पिछड़े इलाके मिर्जापुर में रिहंद बांध परियोजना प्रारंभ हुई। बांध से सिचाई का प्रबंध होने के साथ-साथ पनबिजली भी तैयार होने वाली थी। ऐसा अनुमान किया जाता था कि यहां बनने वाली पचास मेगावाट बिजली किसी काम में नहीं आयेगी। तब वहां के मुख्यमंत्री सी० बी० गुप्ता ने घनश्यामदासजी से अनुरोध किया कि इस बिजली के उपयोग के लिए वह इस बांध के पास कोई कारखाना लगाएं।

इधर घनश्यामदासजी की श्री चन्द्रभानु गुप्ता से बातचीत चल रही थी, उधर एक बार जब घनश्यामदासजी पंडितजी से भेंट करने गये तो पंडितजी ने कहा कि उत्तरप्रदेश बहुत पिछड़ा हुआ प्रांत है। यहां कोई बड़ा कारखाना लगाइये। बिहार में बहुतायत से प्राप्त बाक्साइट की बात घनश्यामदासजी को बहुत पहले ही मालूम थी। उत्तरप्रदेश के इस स्थान और बिहार के बीच कोई बड़ी दूरी नहीं थी। इस कारण उन्होंने रिहंद बांध के पास रेनुकूट नामक स्थान पर अल्युमिनियम का कारखाना लगाने की योजना बना डाली। घनश्यामदासजी ने पंडितजी को यह योजना बतायी तो बहुत प्रसन्न हुए। नेहरूजी ने इस कारखाने के बारे में कई सुझाव दिये। वे सुझाव आवश्यक थे और महत्त्वपूर्ण भी। घनश्यामदासजी को प्रसन्नता हुई कि नेहरूजी उनके प्रयत्नों में इतनी रुचि लेने लगे हैं। यही 'हिंडालको' के जन्म की भूमिका है।

सन उन्नीस सौ अठावन में हिंडालको की योजना शुरू हुई। घनश्यामदासजी चाहते थे कि रेनुकूट में जो अल्युमिनियम बनकर तैयार हो, वह संसार के सबसे अच्छे उत्पादनों में गिना जाये। इसी कारण उन्होंने इस योजना में अमरीका के प्रमुख उद्योगपति काइजर का सहयोग प्राप्त किया। अठारह महीने में ही रिहंद बांध के पास रेनुकूट में हिंडालको बनकर तैयार हो गया। इसे एक उपलब्धि मानी जानी चाहिए। सन उन्नीस सौ बासठ में हिंडालको में उत्पादन शुरू हो गया। विराट उद्योग के क्षेत्र में घनश्यामदासजी का यह ऐतिहासिक चरण था।

हिंडालको विराट उद्योग की योजना बनाते समय घनश्यामदासजी का यह निर्देश था कि वह इस प्रकार बने कि रेनुकूट के प्राकृतिक सौंदर्य की किसी प्रकार की क्षति न हो।

हिंडालको की स्थापना से व्यक्तिगत रूप से घनश्यामदासजी को ही नहीं, बल्कि पूरे राष्ट्र को गर्व हुआ। जनवरी उन्नीस सौ तिहत्तर में प्रधानमंत्री नेहरू अमरीकी

राजदूत प्रो० गालब्रेथ के साथ हिंडालको देखने गये। वहां बिड़ला बंधुओं की ओर से राष्ट्रीय सुरक्षा कोष के लिए दस लाख रुपये देने की घोषणा की गयी। रेनुकूट से लौटकर नेहरूजी ने अमरीकी उद्योगपति काइजर को पत्र भेजा, "रिहंद बांध और रेनुकूट कारखाना, दोनों ही हमें बहुत प्रभावशाली लगे। श्री बिड़ला और उनके साथियों से आपके सहयोग का जो सुखद परिणाम प्रस्तुत हुआ है, उसे देखकर हम विशेष रूप से प्रसन्न हुए।"१५५

इस प्रसंग में घनश्यामदासजी के बारे में काइजर के विचार हिंडालको योजना की पूरी गरिमा को व्यक्त करने में सहायक हैं--"घनश्यामदासजी बिड़ला एक व्यावहारिक आशावादी हैं। केवल स्वप्न देखते रहने से उन्हें संतोष नहीं होता है। वह स्वप्न देखते हैं, उसे कार्यान्वित करने के लिए योजना बनाते हैं और फिर उसे एक सार्थक मूर्त रूप दे देते हैं, जो उनके देश के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।··· उन्हें जानना, उनके साथ काम करना और इसके आगे उन्हें मित्र कह पाना सौभाग्य की बात है।"१५६

हिंडालको की स्थापना में घनश्यामदासजी का प्रबंध-कौशल देखकर काइजर इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने अपना मैसूर सीमेंट कारखाना सन उन्नीस सौ साठ में घनश्यामदासजी को सौंप दिया। नये प्रबंध के अंतर्गत कारखाने का उत्पादन तुरंत ही दुगुना हो गया तथा यह कारखाना जो घाटे में चल रहा था, मुनाफा कमाने लगा। पंद्रह किलोमीटर की दूरी से चूना-पत्थर लाने के लिए एरियल रोपवे लगाया गया। कारखाने की धूल से पर्यावरण दूषित न हो, इसके लिए आधुनिक तकनीकी उपाय किये गये।

सन उन्नीस सौ साठ-सत्तर के बीच बिड़ला बंधु बहुत तेजी से सीमेंट उद्योग के क्षेत्र में आगे बढ़े।

स्वाधीनता के बाद से ही घनश्यामदासजी ने यह अनुभव करना आरंभ किया कि कपड़े की मांग देश में उपलब्ध कपास से पूरी नहीं हो सकती। कृत्रिम रुई से कपड़ा बनाने की बात उसी समय उनके मन में आयी। इसी के फलस्वरूप सन उन्नीस सौ चौवन में ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्युफैक्चरिंग कंपनी का एक 'स्टेपेल फाइबर' विभाग नागदा में खोला गया। केरल के मावूर में उसका 'पल्प' विभाग सन उन्नीस सौ तिरेसठ में ही खुला। इन उत्पादनों के लिए जो रसायन और मशीनरी चाहिए थी, उसके लिए

१५५. एम. आर. मथाई के नाम घनश्यामदासजी का निजी पत्र
१५६. वही

नागदा में ही सन उन्नीस सौ चौंसठ में एक और विभाग खुला। भिवानी टेक्सटाइल की स्थापना भी सन उन्नीस सौ चौंसठ में हुई, जहां कपड़े का उत्पादन होने लगा। सन उन्नीस सौ अड़सठ में मावूर में एक और स्टेपेल फाइबर विभाग खोला गया। हरिहर (कर्नाटक) में सन उन्नीस सौ बहत्तर में पॉलीफाइबर्स कारखाना लगाया गया। उसी साल नागदा में उसके रासायनिक विभाग की स्थापना हुई। इस प्रकार कृत्रिम कपड़ा उद्योग के लिए संपूर्ण इकाई की स्थापना हुई। सन उन्नीस सौ छप्पन में सेंचुरी रेयन समूह की स्थापना बसंतकुमारजी ने कल्याण (महाराष्ट्र) में की। इसके अंतर्गत चार प्रमुख विभाग हैं--टेक्सटाइल रेयन, टायरकार्ड, कास्टिक सोडा और सहायक विभाग। उन सबका मुख्यालय बंबई में है।

व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के लिए निर्यात अत्यंत आवश्यक है और निर्यात की जिम्मेदारी एक सुव्यवस्थित जहाजरानी विभाग पर ही रहती है। घनश्यामदासजी की प्रेरणा से सन उन्नीस सौ इकसठ में कृष्णकुमारजी ने रत्नाकर शिपिंग कंपनी की स्थापना की। काम शुरू हुआ यूगोस्लाविया और जापान से खरीदे गये पुराने तेलवाहक जहाजों से। सन उन्नीस सौ बहत्तर में सब पुराने जहाज बेच दिये गये और उनकी जगह चार नये आधुनिक जहाज स्पेन से खरीदे गये। इसके अतिरिक्त शेल इंटरनेशनल मरीन लिमिटेड से एक तेलवाहक जहाज भी दीर्घकाल के लिए किराये पर लिया गया था जो देश में तेल आयात के काम में आता रहा। उन्होंने निजी रूप से इस पूरी योजना में दिलचस्पी ली और जहाजरानी उद्योग को आगे बढ़ाया।

सन उन्नीस सौ तैंतालिस से ही ग्वालियर में टैक्समैको लिमिटेड कंपनी टेक्सटाइल मशीनरी बनाने का काम कर रही थी। सन उन्नीस सौ छप्पन में घनश्यामदासजी ने उसका बहुत विस्तार किया और उसका नाम बदलकर 'सिमको' कर दिया गया। इसके विस्तार में जापान, पश्चिम जर्मनी और फ्रांस का सहयोग लिया गया। 'सिमको' के अंतर्गत भरतपुर में एक प्रतिष्ठान बनाया गया जिसमें रेलवे वैगन और पुल-निर्माण में काम आने वाली सामग्री बनायी जाती है। सन उन्नीस सौ चौंसठ में वही एक स्ट्रक्चरल विभाग बना। बिड़ला नगर (मध्य प्रदेश) में स्टील फाउंड्री विभाग खोला गया और जोगेश्वरी (बंबई) में शटल फैक्टरी विभाग काम करने लगा।

घनश्यामदासजी के जीवन में गति का बहुत बड़ा महत्त्व था। बचपन में ही उन्होंने जान लिया था कि मरुभूमि की चुनौती को स्वीकार करने का मतलब है, बहुत वेग से उसके निर्मम विस्तार को पार कर जाना। गति का समय के साथ गहरा संबंध

है। वे इस बात को अच्छी तरह समझते थे। इसीलिए स्वतंत्रता के पहले से ही भारत में मोटरकार बनाने की योजना उनके मन में पनप रही थी। गांधीजी भी समय की बर्बादी से बहुत बचते थे। इस कारण मोटरकार की सवारी से उन्हें परहेज नहीं था। इस बात से घनश्यामदासजी के मन में स्वदेशी मोटरकार बनाने का स्वप्न कार्यरूप लेने लगा। घनश्यामदासजी की प्रेरणा से अंततः हिंदुस्तान मोटर्स की स्थापना की गयी, जिसे गांधीजी का भी आशीर्वाद मिला। यहीं से निर्मित एंबेसेडर कारें अब पूरे देश में दौड़ती हैं। उनका निर्यात भी होता है। हिंदुस्तान ट्रक्स भी बनाये जाते हैं और अब 'हिंदुस्तान कानटेसा' नाम से एक और अच्छी कार बनने लगी है।

घनश्यामदासजी द्वारा स्थापित एवं संचालित उद्योगों की बहुत लंबी तालिका है। इन उद्योगों के स्थापन से भारत की राष्ट्रीय समृद्धि में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। आज संसार के औद्योगिक मानचित्र में भारत को स्थान दिलाने का अधिकतम श्रेय बिड़ला उद्योगों को है। घनश्यामदासजी के प्रयासों से ही आधुनिक भारत औद्योगिक वस्तुओं के संदर्भ में आत्मनिर्भर बना है। इन वस्तुओं का विदेशों में निर्यात करने से विदेशी मुद्रा की प्राप्ति हो रही है।

"जहां दैवी संपदा है, परोपकार वृत्ति है, वहां धन हो तो क्या, न हो तो क्या? दैवी संपदा ही प्रधान है, धन गौण साधन है।"१५७ संपदा के प्रति घनश्यामदासजी की यह भावना उनके आत्म-विश्वास की निशानी है। ईश्वर में उनकी अटूट श्रद्धा का यह चिह्न है। उन्हें युधिष्ठिर के इस कथन का मर्म अच्छी तरह विदित था :

यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा, यज्ञाय सृष्टः पुरुषो रक्षिता च।
तस्मातसर्वं यज्ञ स्वोपयोज्यं, धनं न कामाय हितं प्रशस्तम्॥

विधाता ने यज्ञ अर्थात परोपकार के लिए धन पैदा किया और मनुष्य को उसका संरक्षक अर्थात ट्रस्टी बनाया। इसलिए मनुष्य को अपना सारा धन परोपकार में लगाना चाहिए, न कि ऐहिक भोग-विलास में।

जिस ट्रस्टीशिप की कल्पना गांधीजी ने अपने घनश्यामदासजी को दी, उस कल्पना को वह सदा अपने ढंग से कार्यरूप देते रहे। उनका यह विश्वास सदा अडिग रहा--"जब मनुष्य धन का एक रक्षक मात्र है और धन की सृष्टि परोपकार के लिए हुई है, तो मनुष्य उस धन का--पराये धन का--अपने भोग-विलास के लिए व्यय

१५७. मरुभूमि का वह मेघ : रामनिवास जाजू, पृष्ठ १८७

कर ही कैसे सकता है? और करता है, तो अमानत में खयानत करता है।"१५८ संपदा के प्रति इसी दृष्टिकोण ने घनश्यामदासजी को विचारक, शिक्षक एवं समाज-सेवी, त्यागी और परोपकारी बनाया।

अठारह दिसंबर उन्नीस सौ तिरेपन को उन्होंने इलाहाबाद-स्थित 'स्वराज भवन' की मरम्मत के लिए एक लाख रुपये का अनुदान दिया। १५९ स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने वाले घनश्यामदासजी यह मानते थे कि आने वाली पीढ़ियों के लिए स्वराज भवन एक ऐतिहासिक स्मृति-चिह्न है।

प्रधानमंत्री के रिलीफ फंड के अतिरिक्त हर वर्ष किसी-न-किसी संस्था को घनश्यामदासजी वित्तीय सहायता देते ही रहे। कस्तूरबा स्मारक निधि, महात्मा गांधी और सरदार पटेल स्मारक निधियों को जिस श्रद्धा और उदारता से घनश्याम-दासजी ने धन दिया, वह उनकी ट्रस्टीशिप की मान्यता का साक्ष्य है।

घनश्यामदासजी ने औद्योगीकरण प्रक्रिया में देश के औद्योगिक श्रमिकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए उनके व्यापक हितों और जन-कल्याण की ओर विशेष ध्यान दिया है। उनके द्वारा निर्मित प्रत्येक उद्योग-संस्थान का अपना विशेष चरित्र और पहचान है। उसके एक सिरे पर कोई विशेष मंदिर, देवालय है। दूसरे सिरे पर महत्त्वपूर्ण विद्यालय है, जिसमें उद्योग संस्थान से संबंधित श्रमिकों के बालकों के लिए निःशुल्क शिक्षा एवं पाठ्य-सामग्री प्रदान करने की भी व्यवस्था है। उच्च शिक्षा के योग्य बालकों के लिए संबंधित उद्योगों के माध्यम से छात्रवृत्तियां दिलाकर पिलानी के शिक्षण संस्थान में शिक्षा दिलाने की व्यवस्था है। आजकल फैक्ट्री एक्ट, वर्क्समैन कंपनेंनेशन एक्ट आदि के पालनस्वरूप औद्योगिक कर्मचारियों के लिए अनेक श्रमिक कल्याण सुविधाएं देना अनिवार्य हो गया है। घनश्यामदासजी ने अपने प्रत्येक उद्योग में उस समय श्रम-कल्याण-योजनाएं चालू करा दी थीं, जबकि ये योजनाएं इंटरनेशनल लेबर आरगेनाइजेशन के कागजों में ही निहित थीं।

बिड़ला उद्योगों में काम करने वाले कार्यकर्ताओं के कल्याणार्थ भविष्य-निधि योजना भी भारतीय व्यापारियों और उद्योगपतियों में सर्वप्रथम सन उन्नीस सौ चौबीस में प्रारंभ हुई, जिसका नामकरण 'बिड़ला ब्रदर्स प्रोविडेंट फंड इंस्टीट्यूशन' हुआ। उसके माध्यम से कार्यकर्ताओं को विवाह, बीमारी, मकान बनवाने या किसी भी

१५८. माडर्न इंडिया, हैरिटेज एंड अचीवमेंट, घनश्यामदासजी के कामांमोरेशन, पृष्ठ ३२
१५९. बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ ५४

विकास-कार्य के लिए सुलभ किस्तों पर ऋण दिया जाता है। भविष्य-निधि संस्था के सदस्यों की संचित धनराशि पर समुचित दर पर ब्याज देने की व्यवस्था है।

गांधीजी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत अहिंसा की ही देन है। घनश्यामदासजी ने ट्रस्टीशिप को विश्वमानवता के लिए गांधीजी की अनुपम देन मानी है। ट्रस्टीशिप की कल्पना उन्हें भारत की युगों पुरानी संस्कृति से प्राप्त हुई लगती है। सन उन्नीस सौ चौवन में घनश्यामदासजी ने गांधीजी के ट्रस्टीशिप विचार की युधिष्ठिर के आदि वचन से तुलना की है, "जिस ट्रस्टीशिप की कल्पना गांधीजी ने आज श्रमिकों के सामने रखी है, उसी पद्धति का युधिष्ठिर ने भी आज से पांच हजार साल पहले जिक्र किया था। जब मनुष्य धन का एक रक्षक मात्र है और धन की सृष्टि परोपकार के लिए हुई है, तो मनुष्य उस धन का--पराये धन का--अपने भोग-विलास के लिए व्यय कर ही कैसे सकता है ? और (अगर) करता है, तो अमानत में खयानत करता है--ऐसा युधिष्ठिर का कथन था और यही आज गांधीजी का भी कथन है।"१६०

ट्रस्टीशिप की गांधीजी की सीख को घनश्यामदासजी ने श्रद्धापूर्वक ग्रहण किया और साथ ही अपने जीवन में उसका व्यावहारिक प्रयोग भी किया। डा० राजेंद्र प्रसाद के शब्दों में, "यह गांधीजी की शिक्षाओं में से एक है कि धनवान लोग स्वयं को अपने धन का ट्रस्टी समझें और उस धन को ट्रस्ट-संपत्ति समझकर दूसरों की भलाई के लिए खर्च करें। देश के अनेक भागों में बहुत बड़ी संख्या में जो संस्थाएं देखी जाती हैं, चाहे शैक्षणिक संस्था के रूप में हों या धार्मिक मंदिरों और धर्मशालाओं या फिर अस्पतालों की शक्ल में हों, खास तौर पर पिलानी और दिल्ली में वह इस बात का प्रमाण है कि बिड़ला बंधुओं ने गांधीजी की शिक्षाओं के इस भाग (ट्रस्टीशिप) को कोई मामूली ढंग से आत्मसात नहीं किया है। उन्होंने प्रचुर मात्रा में धन अर्जित किया है और उसी तरह अच्छे कामों में उदारतापूर्वक और प्रचुर मात्रा में खर्च भी किया है। उनके द्वारा स्थापित और चलायी जाने वाली संस्थाओं के अलावा बहुत-सी ऐसी संस्थाएं भी हैं, जिन्हें उनके द्वारा दान मिलता रहता है। सच तो यह है कि अच्छे काम के लिए शायद ही कोई ऐसी अपील हो जो उनसे की गयी हो और बेकार गयी हो।"१६१

सन उन्नीस सौ चालीस में गांधीजी के निजी सचिव महादेव भाई देसाई ने घनश्यामदासजी के तपपूर्ण जीवन के संबंध में कहा, "उन्होंने धन की माया से अलिप्त

१६०. बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ ५५
१६१. नेहरूजी का घनश्यामदासजी के नाम पत्र

रहने और अपने हृदय को स्फटिक-सा निर्मल, बुद्धि और वाणी को सत्यपूत रखने का यथासाध्य प्रयत्न किया ।''१६२

ट्रस्टीशिप के सैद्धांतिक, दार्शनिक और वैचारिक विवेचन में भी घनश्यामदासजी ने पर्याप्त योगदान दिया है। उनके विचार से अनासक्त भाव से निजी संपत्ति के स्वामित्व पर ट्रस्टीशिप जोर देता है—संपत्ति के इसी पक्ष पर घनश्यामदासजी ने बापू के जीवन-चरित पर आधारित एक पुस्तक में प्रकाश डाला है। संग्रह का अर्थ पूंजी और आय, दोनों अर्थों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कहा, ''अहिंसा यदि कायरता का दूसरा नाम नहीं तो फिर सच्ची अहिंसा वह है जो अपने स्वार्थ के लिए संग्रह करना नहीं सिखाती । अहिंसक को लोभ कहां ? ऐसी हालत में अहिंसक को अपने लिये संग्रह करना या रक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं होती । पर संग्रह करना, इसकी रक्षा करना स्व और पर दोनों के लाभ के लिए हो सकता है। जो 'स्व' के लिए संग्रह लेकर बैठे हैं, वे अहिंसा धर्म की पात्रता संपादन नहीं कर सकते । जो पर के लिए संग्रह लेकर बैठे हैं, वे गांधीजी के शब्दों में ट्रस्टी हैं । वे अनासक्त होकर योग-क्षेम का अनुसरण कर सकते हैं । वे संग्रह रखते हुए भी अहिंसावादी हैं, क्योंकि संग्रह का कोई राग नहीं ।''१६३

घनश्यामदासजी के अनुसार ट्रस्टीशिप के अंतर्गत निजी संपत्ति के स्वामित्व में स्व और पर का भेद नहीं रहता। ट्रस्टीशिप कर्म को यज्ञ मानकर चलता है । इस प्रकार प्राप्त कर्मफल को कृष्णार्पण करने की भावना पर ट्रस्टीशिप जोर देता है । यहां कृष्णार्पण का तात्पर्य महज लक्ष्मीनारायण मंदिर के निमित्त ही धन को अर्जित और अर्पित करना नहीं है । इसकी सार्थकता तब है, जब लक्ष्मीनारायण मंदिर के स्वर्ण-जटित शिखरों से लेकर दरिद्रनारायण के चरणों तक जनता-जनार्दन की सेवा में स्वयं को अर्पित कर देने की अविरल रसधारा व्यक्ति के अंतःकरण में प्रवाहित हो। तभी एक ओर भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद का समन्वय होगा और दूसरी ओर पूंजी-वाद और समाजवाद इन दोनों से समग्र मानव-कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा ।

इसी तीसरे मार्ग के अन्वेषण, प्रयोग और उसकी प्रतिष्ठा में उद्योगपति घनश्यामदासजी का सारा जीवन लगा था । गांधीजी घनश्यामदासजी की निष्ठा से परिचित थे।

उन्होंने सन उन्नीस सौ चालीस में बिड़ला कालेज, पिलानी के बारे में कहा,

१६२. घनश्यामदासजी का प्रधानमंत्री के नाम पत्र
१६३. श्री जमनालाल, घनश्यामदास बिड़ला, पृ. ११-१२

"बिड़ला पाठशाला के बीज में से निकलकर यह महावृक्ष इतना बड़ा हुआ है। स्वार्थ के साथ परोपकार का मेल साधना बिड़ला बंधुओं के स्वभाव में उतरा है। शिक्षण, आरोग्य आदि में अधिक-से-अधिक दिलचस्पी सेठ घनश्यामदासजी ने ली और पिलानी के विशाल शिक्षण में घनश्यामदासजी ने जो रस लिया, अपनी बुद्धि लगायी और ध्यान दिया, उसके लिए यह संस्था उनकी आभारी है। इस कालेज को सब तरह से आदर्श कालेज बनाने का घनश्यामदासजी का बरसों से प्रयास चल रहा है। आशा है, ऐसी अच्छी शिक्षणवृत्ति को जयपुर राज्य पूरा प्रोत्साहन देगा और कालेज को पूर्ण बनाने की इजाजत भी तुरंत दे देगा। मेरा मत है कि इतनी व्यवस्था और ध्यान से चलनेवाली संस्थाएं हिंदुस्तान में थोड़ी ही हैं।"१६४

घनश्यामदासजी के जीवन में प्रचुर दान के बावजूद धन की कभी कोई कमी नहीं हुई। इस प्रसंग में उन्हीं की बतायी हुई लक्ष्मी-स्वयंवर की कथा उल्लेखनीय है। लक्ष्मी उसी का वरण करती है, जिसे लक्ष्मी की बिलकुल कामना न हो। जो लक्ष्मी के इर्द-गिर्द चक्कर काटते हैं, उसे पाने की कोशिश में पागल से लगे रहते हैं, वे जीवन भर सच्चे अर्थों में अर्थवान नहीं हो पाते। "···विष्णु में सब गुण हैं, पर उन्हें कहां लक्ष्मी की गरज पड़ी है? विष्णु की इस निस्पृहता ने लक्ष्मी को आकर्षित किया और अंत में उन्हीं के गले में उसने वरमाला डाली।··· मतलब, जो लक्ष्मी का स्वामी बनना चाहता है, उसमें तप, अक्रोध, ज्ञान, अनासक्ति, इंद्रियों का निग्रह और निराश्रय-वृत्ति होनी चाहिए। वह धर्म का उपासक हो, स्नेहार्द्र हो, त्यागवृत्ति वाला हो, वीर हो और निस्पृह हो। ये गुण जिसमें हों, लक्ष्मी उसके पीछे दौड़ती है।"१६५

घनश्यामदासजी ने सोचा था, स्वाधीनता के बाद भारत का वरण करने के लिए लक्ष्मीजी इसी प्रकार आएंगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। स्वतंत्रता से पहले भारत को गरीब देश कहा जाता था, बाद में भी इसी विशेषण का प्रयोग हो रहा था। वह समझ गये कि अर्थव्यवस्था में कहीं गड़बड़ी है। पूंजीवाद से अलग होकर, समाजवाद के रास्ते पर चलते हुए सारी व्यवस्था जैसे लड़खड़ाने लगी थी। घनश्यामदासजी की कल्पना का समाजवाद तो समृद्धि बांटने वाली एक व्यवस्था थी, जिसके दो आधार थे—बाधाहीन उत्पादन और उसका उचित विवरण।

अपने को समृद्धि का ट्रस्टी समझनेवाले घनश्यामदासजी के मन में पूंजीवाद और समाजवाद दोनों से ही अलग यह—'संपन्नता का समाजवाद'—एक नयी कल्पना

१६४. श्री जमनालालजी, घनश्यामदास बिड़ला, पृष्ठ ११-१२
१६५. बापू, घनश्यामदास बिड़ला, पृष्ठ ५

थी, जो भारत को शीघ्रातिशीघ्र सक्षम, समृद्ध और शक्तिशाली बना सकती थी। वे कहते थे, "मैं वैसी सब चीजें पसंद करता हूं, जिससे देश की संपत्ति बढ़ती है, जिससे अधिक लोगों को काम मिलता है। मैं पूंजीवादी हूं, किंतु मेरा विश्वास समाजवाद में है। वह समाजवाद जिसमें सबको समान अधिकार है, ज्यादा रोजगार मिलता है, हर एक का जीवन-स्तर उन्नत होता है।" समाजवाद की परिभाषा घनश्यामदासजी की दृष्टि में गरीबी का बंटवारा करना नहीं था। कोई भी वाद हो, पहला ध्येय तो देश में उत्पादन और समृद्धि बढ़ाने का होना चाहिए, ऐसा उनका मत था। केरल की कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार के निमंत्रण को घनश्यामदासजी द्वारा स्वीकार कर, वहां अपना, निजी क्षेत्र का उद्योग शुरू करना, इसका एक राष्ट्रीय स्तर का उदाहरण है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर क्यूबा में फिडेल कास्त्रो के साम्यवादी शासन के निमंत्रण पर वहां अपना व्यापार संबंध स्थापित कर, घनश्यामदासजी ने यह प्रमाणित कर दिया कि पूंजीवाद और समाजवाद दोनों से आगे एक तीसरा सार्थक मार्ग है। यह इस बात का भी प्रमाण है कि पूंजीवादी व्यवस्था अपनी अंतर्भूत शक्ति एवं सामर्थ्य के बल पर विस्तार तथा वृद्धि के लिए प्रस्तुत है। इससे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कम्युनिस्टों का पूर्वाग्रह किसी हद तक शिथिल हुआ। उन्होंने यह स्वीकार किया कि पूंजीवाद को नष्ट करने के बाद नयी व्यवस्था को स्थापित करने का दुराग्रह चल नहीं सकता। जैसा सोवियत संघ और चीन में हुआ है—पुरानी व्यवस्था को पूर्णतः नष्ट कर, उसकी राख पर नयी व्यवस्था को खड़ा करना—वैसा भारत की भूमि पर संभव नहीं हो सकता।

घनश्यामदासजी ने एक बार कलकत्ता और पश्चिम बंगाल से अपना कारोबार हटा लेने की बात कही थी। इसका प्रभाव पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार की नीति पर पड़ा। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ढंग से घनश्यामदासजी पर जोर डाला गया कि वे ऐसा निर्णय न लें, क्योंकि इसके फलस्वरूप बंगाल की अर्थव्यवस्था लड़खड़ा जाती। उस अवसर पर घनश्यामदासजी ने 'शांतिपूर्वक सहनशीलतापूर्ण प्रयास' की बात कही थी और उस पर अमल भी किया था।

उस समय घनश्यामदासजी कलकत्ता के अपने प्रातःकालीन भ्रमण के साथियों—प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, रामकुमार मुबालका, भागीरथ कानोडिया, भगवती प्रसाद खेतान आदि—से गांधीजी की यह बात कहा करते थे कि धनपति को यह मानना चाहिए कि जगदीश्वर ने उसे संपत्ति का मालिक नहीं, संरक्षक बनाया है। वह संपत्ति

का न्यासी (ट्रस्टी) है। उसका धार्मिक कर्त्तव्य यही है कि धन को वह देशवासियों का माने, उसका उपयोग देश की जनता की भलाई के लिए ही करे। धन-संपदा की वृद्धि करने के लोभ में गरीब को न सताये, न उसका दोहरा शोषण करे।

घनश्यामदासजी ने गांधीजी के इस ट्रस्टीशिप वाले सिद्धांत का पालन करने का पूर्ण प्रयत्न किया। देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार उन्होंने यथासंभव अपने उपार्जित धन को इसी सिद्धांत के अनुसार उपयोग करने की चेष्टा की। वह कोई साधारण बात नहीं थी।

अपने आपको धन का न्यासी समझने के कारण घनश्यामदासजी ने अपने को सदा राष्ट्रहित से जोड़े रखा। उनकी मान्यता थी कि धनपति यदि अपने धन का ठीक नियोजन करें, गलत उपायों से उसकी वृद्धि करने से बचें तो देश में समृद्धि आते देर नहीं लगती। कुछ साल पहले यूरोपीय देशों ने मिलकर यूरोपीय आर्थिक समुदाय संगठन बनाया। उसका मुख्य उद्देश्य था—सहयोग और सहायता से वे अपने वाणिज्य व्यापार-क्षेत्र को इस प्रकार से आत्मनिर्भर बना लें कि बाहर के देशों पर उनका अवलंबन कम-से-कम रहे। भारत जैसे विकासशील देश स्वभावतः इस बात से चिंतित हो गये। यह तो जैसे एक षड्यंत्र था विकासशील देशों के व्यापार को दबाकर, उनकी प्रगति पर प्रतिबंध लगाने का। घनश्यामदासजी उस समय लंदन में थे। उन्होंने वहीं अपना वक्तव्य दिया कि इस समुदाय का संगठन, भारत को कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकता। एक समय ऐसा आयेगा जब यूरोपीय समुदाय स्वयं भारत की मित्रता तथा व्यापार-संबंध की वृद्धि के लिए उत्सुक होंगे।

उनकी यह दूरदर्शितापूर्ण वाणी आगे चलकर सच हुई। उन्होंने देखा कि संसार के वे देश जहां स्वतंत्रता नयी-नयी आयी है, समाजवाद, पूंजीवाद और साम्यवाद के झगड़ों में पड़कर लक्ष्य-भ्रष्ट हो रहे हैं। वे कोरे सिद्धांतों के लिए लड़ रहे हैं और उस लड़ाई में नष्ट होती अपनी शक्ति, अपनी संपदा की ओर उनकी दृष्टि नहीं जा रही है। घनश्यामदासजी को लगने लगा कि कोई भी 'वाद' अपने आपमें पूर्ण नहीं है, किसी भी एक वाद में मनुष्य की गरीबी, उसकी भूख, उसकी मूलभूत आवश्यकताओं का उत्तर नहीं है। अतः उन्होंने महसूस किया कि उन्हें वही करना चाहिए, जिससे कि कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक लोगों में संपन्नता आ सके। इसके लिए किसी एक सिद्धांत या किसी एक वाद के पीछे लग जाना कोई मायने नहीं रखता। घनश्यामदासजी संपन्नता के मर्म को समझते थे और उसके लिए कार्य करते थे।

इसी प्रेरणा के फलस्वरूप घनश्यामदासजी के सामने उद्योग के पीछे, लाभ से आगे परम लाभ का लक्ष्य स्पष्ट है। यह देखा जाता है कि जो सहज है, उसी को अपना धर्म मानकर मनुष्य आराम नहीं करना चाहता। कोई दुर्बल-चित्त व्यक्ति यदि धर्म को अपनी सुविधा के अनुसार अपना लेता है, तो उसकी दुर्गति का अंत नहीं रहता। अपने धर्म और कर्म-पथ के विषय में घनश्यामदासजी के मानस ने सनातन वाणी में कहा है : 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम पथस्तत् कवयो वदन्ति।' दुख को मनुष्य ने मनुष्यत्व का वाहन समझा है, और सुख को ही उसने सुख नहीं कहा। उसने कहा है, 'भूमैव सुखं।''

स्वप्न : सीमाहीन

सन उन्नीस सौ बासठ का वर्ष बिड़ला-परिवार के लिए ऐतिहासिक महत्त्व का था। ठीक सौ वर्ष पहले दस मार्च अठारह सौ बासठ के दिन सेठ शिवनारायण बिड़ला ने बंबई में अपने कारोबार की नींव रखी थी। घनश्यामदासजी और उनके भाइयों ने बिड़ला उद्यम की शताब्दी मनाने का फैसला किया। घनश्यामदासजी ने चौबीस फरवरी उन्नीस सौ बासठ को नेहरूजी को सूचित किया, "हम लोग शताब्दी के उपलक्ष्य में देश में टेक्नालाजी की सबसे अच्छी संस्था स्थापित करने की सोच रहे हैं। इसके लिए अमरीका की प्रसिद्ध संस्था 'मेसाच्यूसेट्स इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी' से परामर्श लिया जा रहा है। हमारी संस्था भी बिलकुल उसी जैसी होगी।"१६६

उसके उत्तर में सत्ताईस फरवरी को नेहरूजी ने लिखा, "शताब्दी मनाने का जो तरीका आपने सोचा है, वह मुझे बहुत अच्छा लगा। आप जिस काम को उठाएंगे, मुझे विश्वास है कि वह सफल होगा।"

यह समारोह विशाल पैमाने पर कलकत्ता में हुआ। वेल्वेडियर के प्रांगण में सुरुचि से निर्मित एक भव्य पंडाल में यह आयोजन हुआ। इस समारोह के सारे वातावरण पर घनश्यामदासजी के व्यक्तित्व का प्रभाव स्पष्ट था। उनके साथ ही बिड़ला-परिवार के उनसे बड़े भाई रामेश्वरदासजी, छोटे भाई ब्रजमोहनजी और अन्य सदस्य उपस्थित थे। घनश्यामदासजी के घनिष्ठ मित्र डा० विधानचंद्र राय इस समारोह का उद्घाटन करने आये थे। इसी प्रकार का आयोजन घनश्यामदासजी की उपस्थिति में उसी वर्ष बंबई में किया गया। इस शताब्दी-समारोह के अवसर पर अपनी सेवा के पच्चीस वर्ष पूरे कर लेने वाले प्रबंधकों और कर्मचारियों को विशेष सम्मान से विभूषित किया गया।

---

१६६. घनश्यामदासजी का नेहरूजी के नाम पत्र

इसी वर्ष घनश्यामदासजी ने अपने पौत्र आदित्य विक्रम को रासायनिक इंजीनियरी पढ़ाने के लिए प्रसिद्ध अमरीकी संस्था एम० आई० टी० भेजा। बिड़ला-परिवार में यह विशेष घटना थी। वे बिड़ला-परिवार के पहले सदस्य थे जो विदेश में शिक्षा प्राप्त करने गये। यह जैसे दूसरी शताब्दी का शुभारंभ था। विद्यालय में शिक्षा संपादन को दादोजी ने हमेशा मानसिक आलस्य का लक्षण माना। घनश्यामदासजी का कहना था, "मेरा ख्याल है कि मनुष्य को स्वयं ही अपने आपका गुरु बनना चाहिए।... इसके ये माने नहीं कि हम अपने अग्रज विद्वानों और महापुरुषों के अनुभवों का लाभ न लें, पर लाभ तो तभी मिलेगा, जब हम हर पुराने विचार का स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय करें, स्वतंत्रतापूर्वक उसे बुद्धि की कसौटी पर कसकर स्वतंत्र निर्णय करें। इस दृष्टि से मैं महज श्रद्धा का अत्यंत विरोधी हूं।"१६७

शिक्षा के प्रति स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेकर उसे अपनी स्वतंत्र बुद्धि की कसौटी पर कसकर उन्होंने देख लिया था कि समय बदल गया है, विज्ञान का विशेष युग आ चुका है। "हाइड्रोजन का आणविक वजन निरंतर एक ही क्यों रहता है, चाहे हम उसे कितना ही उलट-पुलट क्यों न करें, और आक्सीजन का सोलह ही क्यों? सूर्यमंडल के चारों ओर ग्रह निरंतर एक ही गति से क्यों घूमते हैं? और, अणु के प्रोटन के चारों ओर ग्रहों की तरह इलेक्ट्रोन क्यों एक ही चाल से निरंतर घूमते रहते हैं? यह सादृश्य क्यों है?"१६८ इन्हीं प्रश्नों का वैज्ञानिक उत्तर अपने पौत्र के माध्यम से घनश्यामदासजी जानने को उत्सुक हो गये थे। उनके प्रिय पौत्र को बुद्धि की स्वतंत्रता के साथ विचारने की आदत में कोई कमी न आने पाये, इसके लिए वे पूरे सतर्क थे। आदित्य विक्रम अमरीका पहुंचे थे कि घनश्यामदासजी स्वयं अध्यापकों से विचार-विमर्श करने अविलंब वहां जा पहुंचे। वहां वे इस सत्य के प्रति पूर्णतः सतर्क थे, "अध्यापक की सिखाई गलतियों को सुधारने में समय अधिक लगता है, बनिस्बत अपनी की गयी गलती सुधारने के। इसके लिए दिमाग की खिड़की खुली होनी चाहिए। अश्रद्धा से सनी हुई श्रद्धा ही मनुष्य को सुसंस्कृत विचार देती है।"१६९

शिक्षा के प्रति उनके क्या अनुभव रहे हैं—बुद्धि की स्वतंत्रता क्या होती है, स्वतंत्र विचार कैसे प्राप्त होते हैं, स्वतंत्र अध्ययन करके उत्तर पाने में क्या उपलब्धि है? इस सबके प्रति उन्होंने अपने विचारों को 'मेरा शिक्षण' नामक शीर्षक से बीस

१६७. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ ३१
१६८. वही, पृष्ठ ३२
१६९. वही, पृष्ठ ३२

दिसंबर उन्नीस सौ बासठ में एक लेख के रूप में लिखा। लेख में वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे, "उद्योग करना है और आदर्श संस्था स्थापित करनी है तो कठिनाइयां आती ही रहेंगी। संघर्ष मनुष्य का धर्म है। भगवान के भरोसे आगे बढ़ते जाना है।"१७०

दो साल की पढ़ाई पूरी करके और एम० बी० ए० की डिग्री लेकर जब आदित्य विक्रम भारत लौटे तब नौ जनवरी उन्नीस सौ पैंसठ को उनका राजश्री से विवाह हुआ। पौत्र में बुद्धि की स्वतंत्रता के साथ विचारने की कितनी क्षमता है, घनश्यामदास-जी ने इस बात की स्वयं परीक्षा लेनी चाही।

उन्होंने आदित्य से कहा, "हिंडालको या ग्वालियर रेआन से जुड़ जाओ।"

आदित्य ने स्पष्ट उत्तर दिया, "मैं तो स्वतंत्र रूप से काम करूंगा।"

पौत्र से सही उत्तर पाकर वे पूर्णतया संतुष्ट हो गये। उन्हें प्रमाण मिल गया कि बुद्धि की स्वतंत्रता के साथ विचार कर पौत्र ने सही उत्तर दिया है।

सन उन्नीस सौ बासठ में जब चीन ने भारत पर विश्वासघाती हमला किया, तब घनश्यामदासजी को सहसा याद आया कि जब चियांग काई शेक सपत्नीक भारत आये थे, तब गांधीजी ने घनश्यामदासजी को पत्र लिखा था कि चीनी 'विश्वास के पात्र नहीं हैं।' सन उन्नीस सौ बासठ में चीनियों ने गांधीजी की इस धारणा की पुष्टि कर दी। बांगडुग सम्मेलन में चीनी नेता चू-एन-लाई ने नेहरूजी की पंचशील योजना पर हस्ताक्षर किये थे। इसके कुछ ही दिनों बाद उन्होंने जिस विश्वासघाती ढंग से अचानक भारतवर्ष पर आक्रमण किया, उससे पूरा राष्ट्र स्तब्ध रह गया। नेहरूजी को गहरा आघात लगा।

उस समय चीन के प्रति उदारनीति के विरोधियों की ओर से नेहरूजी पर तीव्र प्रहार हो रहे थे। इस सबके बावजूद घनश्यामदासजी ने राष्ट्रहित में नेहरूजी को पूरा समर्थन और सहायता देने की नीति अपनायी। उन्होंने तेईस अक्तूबर उन्नीस सौ बासठ को नेहरूजी को पत्र लिखा, "'''आपने लोगों से जो अपील की है कि वे विराट पैमाने पर उत्पादन करने के लिए कठोर परिश्रम में जुट जायें, मैं पूरी तरह सहमत हूं। मैं तो कठोर-से-कठोर परिश्रम करने को तैयार हूं। मगर मैं यह नहीं समझ पाता कि अपनी अतिरिक्त ऊर्जा का किस तरह उपयोग करूं? ···मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि समूचा वाणिज्य समुदाय अधिक उत्पादन की खातिर बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी देने और ज्यादा-से-ज्यादा मेहनत करने को तैयार है।"१७१

१७०. बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ ३३
१७१. वही, पृष्ठ ३४

राष्ट्रीय सुरक्षा कोष के लिए घनश्यामदासजी ने बड़े पैमाने पर धन दिया। उस वर्ष नेहरूजी के जन्मदिन पर उन्होंने अपनी मनोकामना प्रकट की, "कुछ भी हो, मेरी निरंतर प्रार्थना है कि भगवान आपका मंगल करे और कठिनाइयों की घाटियों को लांघने में आपको बल, बुद्धि और विक्रम दे।··· आपका बोझ कुछ भी हलका कर सकूं, ऐसी कामना रहती है और कर्म उसका अनुसरण करते हैं। यह प्रवाह बहता रहे, ऐसी ईश्वर से मांग रहती है।"

घनश्यामदासजी ने इस दौर में नेहरूजी से बराबर यही आग्रह किया कि उत्पादन और आपूर्ति के लिए एक अलग मंत्रालय बनाया जाना चाहिए। यह किसी ऐसे तेजस्वी व्यक्ति के अधीन रखा जाना चाहिए, जिसे उद्योग-व्यापार का समुचित ज्ञान हो। अपने पत्र-व्यवहार में वे नेहरूजी से निरंतर निवेदन करते रहे, "जब तक उत्पादन बढ़ता नहीं, तब तक कीमतों की रोकथाम संभव नहीं होती।"

चीनी आक्रमण के बाद टी० टी० कृष्णामाचारी उद्योग-मंत्री बनाये गये। यह घनश्यामदासजी के लिए निश्चय ही उत्साहजनक सिद्ध हुआ। उन्होंने श्रीमती इंदिरा गांधी को बीस नवंबर उन्नीस सौ बासठ के पत्र में लिखा, "उत्पादन बढ़ाने के विषय में अभी तक सरकार से हमें उचित मार्ग-दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है। लेकिन अब टी० टी० के० ने काम संभाला है, तो मैं आशा करता हूं कि कोई ऐसा मार्ग दिखाया जायेगा, जिस पर हम आगे बढ़ सकेंगे।"

उन दिनों श्रीमती इंदिरा गांधी बड़े पैमाने पर पूर्वोत्तर सीमांत क्षेत्र में सेवा-सहायता कार्य में लगी हुई थीं। इस कार्य में घनश्यामदासजी का निजी विमान उनके उपयोग के लिए सदा उपलब्ध रहता था।

चीनी आक्रमण के फलस्वरूप अमरीका और भारत एक-दूसरे के निकट आ रहे थे। घनश्यामदासजी जो प्रारंभ से ही अपने विदेशी संपर्क-सूत्रों के माध्यम से महत्त्व-पूर्ण जानकारी पाने और देने का काम सरदार पटेल और पंडित जवाहरलाल नेहरू के लिए करते आये थे, पुनः सक्रिय हुए। वे अप्रैल उन्नीस सौ तिरेसठ के अंत में अमरीका गये। वहां उन्होंने अपने ढंग से भारत और नेहरूजी के पक्ष में जनमत तैयार करने का पूरा प्रयत्न किया। अपने तीन हफ्ते की अमरीका-यात्रा से लंदन लौटकर उन्होंने पच्चीस मई उन्नीस सौ तिरेसठ को प्रधानमंत्री नेहरूजी को एक निजी पत्र में यह बताया कि भारत के लिए अमरीकी सहायता और पूंजी-विनियोजन बढ़ाने की दिशा में उन्होंने क्या-क्या प्रयत्न किये। अमरीकी उद्यमियों को उन्होंने हर तरह से समझाने का प्रयत्न

किया कि निजी उद्योग क्षेत्र में विशाल इस्पात कारखाना लगाना राष्ट्र के लिए हितकर नहीं है ।

उन्होंने नेहरूजी को स्पष्ट शब्दों में लिखा, "सरकार की नीति क्या हो, क्या नहीं हो, इस बारे में बहस फिजूल है । लेकिन हम यह नहीं भूल सकते कि उत्पादन में गिरावट आ रही है और गिरावट को रोकना जरूरी है । मंत्रिमंडल की कोई उच्चाधिकार प्राप्त समिति उत्पादन बढ़ाने के विषय में एक नीति स्थिर कर दे । उस नीति के स्थिर हो जाने के बाद फिर सब काम अपने आप होते चले जाने चाहिए, बगैर रोक-टोक के ।"१७२

जवाहरलाल नेहरू के बारे में, घनश्यामदासजी ने लिखा है--"... जो पहली छाप मुझ पर पड़ी, उससे मुझे लगा कि मैं उनके हृदय में शायद ही कभी प्रवेश कर सकूं । मैंने समालोचक बनकर पंडितजी का अध्ययन किया है । पर मैं नहीं कह सकता कि मैं आज भी उन्हें जान पाया हूं । ... इन सबके बाद मुझे आश्चर्य नहीं हुआ जब गांधीजी ने अपनी मृत्यु के कुछ ही दिन पहले मुझसे एक बार कहा था, जवाहर विचारक है, सरदार कारक है ।"१७३

भारत की आर्थिक व्यवस्था के कई पहलुओं में पंडितजी से मतभेद होते हुए भी घनश्यामदासजी के संबंध नेहरूजी से बहुत अच्छे थे और ज्यों-ज्यों समय बीता, उनके संबंध और घनिष्ठ होते गये ।

चीनी आक्रमण से नेहरूजी के व्यक्तित्व को काफी धक्का पहुंचा था । उन्होंने दक्षिण-पंथियों से समझौता करने की आवश्यकता अनुभव की । उन्होंने कृष्ण मेनन को मंत्रिमंडल से हटाकर कृष्णामाचारी जैसे लोगों को मंत्रिमंडल में फिर से लेकर अपने विपक्षियों को संतुष्ट करने की चेष्टा की ।

सन उन्नीस सौ चौंसठ के आरंभ में ही नेहरूजी अस्वस्थ हो गये । उनके बीमार हो जाने से घनश्यामदासजी बहुत चिंतित हुए । नेहरूजी को देखने के लिए वे बराबर तीन मूर्ति भवन जाते रहे और हमेशा उनके लिए उत्कृष्टतम गुलाब के फूल ले जाते रहे । उन्हें यह चिंता होने लगी कि राजनीतिक मंच पर नेहरूजी के न रहने से एक अनिश्चय का संकट उपस्थित हो सकता है । यदि शासन की बागडोर अनुदार शक्तियों के हाथ में चली गयी तो देश में सामाजिक और आर्थिक विकास की गति मंद हो जायेगी ।

---

१७२. घनश्यामदासजी का नेहरूजी के नाम पत्र
१७३. बिखरे विचारों की मराठी, पृष्ठ ४५-४६

नेहरूजी की मृत्यु के बाद घनश्यामदासजी ने अपने को निश्चय ही अकेला अनुभव किया। पांच जनवरी उन्नीस सौ पैंसठ को 'जवाहरलाल--दि ग्रेट मैन' शीर्षक से घनश्यामदासजी ने श्रद्धांजलि अर्पित की, "मैंने जवाहरलालजी में यह गुण देखा कि अपने पूर्वाग्रह से मुक्त होने में उन्हें देर नहीं लगती थी। ··· मैंने जवाहरलालजी को कभी अपना ढोल पीटते हुए या फिर दूसरों की निंदा करते हुए नहीं देखा। देश की सबसे बड़ी सेवा उन्होंने यह की कि भारत में लोकतंत्रात्मक संस्थाओं और परंपराओं का निर्माण किया। लोकतंत्र के प्रति वह पूरी तरह और बगैर किसी अगर-मगर के समर्पित थे।"

नेहरूजी के बाद लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने। उन्हीं के समय सन उन्नीस सौ पैंसठ में भारत-पाक के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध में दो पड़ोसी देशों के संबंध तो बिगड़े ही, पाकिस्तान को बुरी तरह पराजित होना पड़ा। लेकिन उसका असर भारत की आर्थिक स्थिति पर भी पड़ा। युद्ध के तुरंत बाद घनश्यामदासजी अमरीका गये। उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया कि भारत-पाक युद्ध में अमरीका का रुझान पाकिस्तान की ओर न रहकर भारत की ओर रहे। साथ ही उन्होंने प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्रीजी से यह अनुरोध किया कि वह अमरीकी मैत्री और सहायता का महत्त्व समझें और उसे बढ़ाने की कोशिश करें। इस बीच उनके और शास्त्रीजी के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ, उसका मुख्य विषय यही रहा कि शास्त्रीजी भारतीय उद्योगपतियों को उत्पादन बढ़ाने और आयात की आवश्यकता समाप्त करने के लिए प्रोत्साहन दें। शास्त्रीजी का नेतृत्व कम समय रहा। ताशकंद में उनकी मृत्यु हो गयी, लेकिन थोड़े समय में ही उनकी नीतियों ने आस्था का बीजा-रोपण कर दिया था।

शास्त्रीजी की मृत्यु के बाद इंदिराजी प्रधानमंत्री बनीं। उसके थोड़े ही दिनों बाद पता लगने लगा कि कांग्रेस में गांधीवादियों और नेहरूवादियों के बीच खुलकर संघर्ष होने वाला है। सन उन्नीस सौ सड़सठ का चुनाव इसी वैमनस्य के वातावरण में हुआ। चुनाव में कांग्रेस कई राज्यों में हार गयी और केंद्र में भी उसका पहले जैसा वर्चस्व नहीं रहा।

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की नीति मूलत: समाजवाद की ओर प्रेरित थी। अपने चातुर्य से उन्होंने कांग्रेस की भीतरी लड़ाई जीत ली। इस नये वातावरण में, स्वभावत: घनश्यामदासजी को यही पता नहीं लग रहा था कि वह हैं कहां? उस समय उन्हें गांधी, पटेल और नेहरू तीनों ही समान रूप से याद आ रहे थे।

वे तो इस मानस के व्यक्ति थे---"अच्छे ध्येय के लिए भी बुरे साधनों का प्रयोग त्याज्य है।"१७४

इस बीच परिवार में सुखद और दुखद दो घटनाएं हुईं। चौदह जून उन्नीस सौ सड़सठ को प्रपौत्र का जन्म हुआ। आदित्य विक्रम के इस पुत्र का नामकरण घनश्यामदासजी ने स्वयं किया---कुमारमंगलम।

तेईस जून उन्नीस सौ सड़सठ को बड़े भाई जुगलकिशोरजी बिड़ला का दिल्ली में देहावसान हो गया। उनकी आयु चौरासी वर्ष की थी। जुगलकिशोरजी आस्थावान धार्मिक पुरुष थे। बिड़ला-परिवार को पीपल के वृक्ष की तरह वे छाया दे रहे थे। समाजसेवा और समाज-सुधार के प्रति उनके और घनश्यामदासजी के विचार समान थे। उनका पं० मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपतराय से घनिष्ठ संबंध था। उनकी मृत्यु दिल्ली के बिड़ला हाउस में ही हुई। पिलानी के प्रायः सभी नेता और प्रमुख व्यक्ति उनके अंतिम दर्शनों के लिए आये। उनका अंतिम संस्कार निगमबोध घाट में लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने किया। वे ही उनके दत्तकपुत्र हैं। जुगलकिशोरजी की मृत्यु से घनश्यामदासजी को गहरा सदमा पहुंचा। वे राजनीति से तो पहले ही उदास हो गये थे, अब अकेलापन भी महसूस करने लगे।

जुगलकिशोरजी वास्तविक अर्थों में एक साधु पुरुष थे। वे समाज-सुधारक भी थे। वे सभी आर्य धर्मों की एकता पर विश्वास करते थे---जैसे हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिक्ख धर्म इत्यादि। उन्होंने हरिजनों के उद्धार के लिए प्रयत्न किये और हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश दिया जाये, इस आंदोलन का समर्थन किया। घनश्यामदासजी पर उनका अटूट विश्वास था। घनश्यामदासजी जो भी सलाह उन्हें देते थे, वे बिना किसी हिचक के तुरंत मान लेते थे। घनश्यामदासजी अपने सबसे बड़े भाई का पूरा सम्मान करते थे। जब जुगलकिशोरजी की मृत्यु हुई तब घनश्यामदासजी दिल्ली में नहीं थे, लेकिन जैसे ही उन्हें जुगलकिशोरजी की मृत्यु का समाचार मिला, वे तुरंत दिल्ली गये। जुगलकिशोरजी का समाज के सभी वर्गों में बहुत सम्माननीय स्थान था। उनका शव एक खुले ट्रक में जुलूस के रूप में ले जाया गया। वे गर्मी के दिन थे और धूप तेज थी, तब भी घनश्यामदासजी अपने बड़े भाई के शव के पास ट्रक पर खड़े रहे। घनश्यामदासजी ने अपने दोस्तों और शुभेच्छुकों के बार-बार कहने पर भी बंद कार में जाना स्वीकार नहीं किया।

---

१७४. बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ ४७

घनश्यामदासजी राजनीति से उदासीन होते जा रहे थे। सन उन्नीस सौ इकहत्तर के आते-आते वे उस ओर से विरक्त हो गये। सन उन्नीस सौ इकहत्तर में मध्यावधि चुनाव हुए तो कृष्णकुमारजी स्वतंत्र पार्टी की ओर से चुनाव में खड़े हुए। घनश्यामदासजी नहीं चाहते थे कि कृष्णकुमारजी चुनाव लड़ें। उनका कहना था कि एक उद्योगपति को अपना व्यापार संभालना चाहिए और उसे राजनीति से दूर रहना चाहिए। कृष्णकुमारजी स्वयं स्वतंत्र विचारों के व्यक्ति हैं। वे अपने पिताजी का आदर करते थे। परंतु अपने विचार व्यक्त करने में हिचकते नहीं थे। घनश्यामदासजी भी उनके विचारों से अच्छी तरह परिचित थे। इसलिए उनसे अधिक कहते नहीं थे। कृष्णकुमारजी अपने पिताजी की बात से सहमत नहीं हुए। उन्होंने अपनी असहमति प्रकट भी की। उन्होंने यह दलील पेश की कि यदि दूसरे क्षेत्रों में काम करने वाले लोग राजनीति में जा सकते हैं तो एक व्यवसायी को भी राजनीति में क्यों नहीं जाना चाहिए। उनके इस विचार का दृढ़तापूर्वक समर्थन किया—उनके चाचा ब्रजमोहनजी ने।

कृष्णकुमारजी ने कहा था कि वे अपने पिताजी की सहमति के बिना कदापि चुनाव नहीं लड़ेंगे। इसे वे अपना नैतिक धर्म समझते थे। कृष्णकुमारजी के पक्के इरादे को देखकर अंत में घनश्यामदासजी ने अपनी जिद छोड़ दी और कृष्णकुमारजी को चुनाव लड़ने की अनुमति दे दी। कृष्णकुमारजी ने चुनाव-प्रचार में बहुत मेहनत की, लेकिन वे हार गये। कृष्णकुमारजी ने अपनी इस हार को सहज ढंग से स्वीकार किया। सच बात तो यह है कि चुनाव लड़ते समय यह देखकर कि चुनाव जीतने के लिए जितने घटिया किस्म के हथकंडे और तरीके अपनाये जाते हैं, उससे वे बहुत परेशान हो चुके थे। चुनाव में वोट मांगने के लिए एक उम्मीदवार को कितना झुकना पड़ता है, यह देखकर उन्हें घृणा हुई। उन्होंने उसी समय अपने मित्रों और विश्वस्त साथियों से कहा था कि यद्यपि उनकी इच्छा राजनीति में प्रवेश करने की है, लेकिन यदि वे चुनाव जीत भी गये तो इसके बाद आगे फिर कभी लोकसभा चुनाव के लिए खड़े नहीं होंगे। उन्होंने कहा कि यदि उन्हें मौका मिला तो वे राज्यसभा के लिए चुनाव लड़ना पसंद करेंगे।

सन उन्नीस सौ चौहत्तर में वे राज्यसभा के चुनाव में खड़े हुए, किंतु कुछ कार्यकर्ताओं ने उन्हें धोखा दिया और इसलिए वे फिर चुनाव हार गये।

कृष्णकुमारजी व्यापार के साथ-ही-साथ कई तरह की संस्थाओं और सामाजिक गतिविधियों के साथ जुड़ते गये। यह गुण उन्होंने अपने पिताजी से पाया था। वे

'आई सी आई सी आई' और स्टेट बैंक आफ इंडिया के बोर्ड (प्रमंडल) में कई वर्षों तक रहे। कृष्णकुमारजी 'सी एस आई आर' (वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद) और केंद्रीय औद्योगिक सलाहकार समिति के भी कई वर्षों तक सदस्य रहे। वे रेल-मंत्रालय की 'केंद्रीय रेलवे उपभोक्ता सलाहकार समिति' के सदस्य भी थे। इसी तरह 'बोर्ड आफ ट्रेड' (व्यापार प्रमंडल) के भी वे सदस्य रहे हैं। वे दो वर्षों तक मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी के अध्यक्ष थे। अध्यक्ष के रूप में उन्होंने बिहार के बहुत-से क्षेत्रों का दौरा किया और बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए राहत केंद्र खोले। उन्होंने शेखावटी क्षेत्र में बहुत-से कुएं, कई स्कूलों में कमरे, पानी की टंकियां इत्यादि भी बनवायीं।

वे सन उन्नीस सौ चौहत्तर-पचहत्तर में 'फिक्की' (फेडरेशन आफ इंडियन चैंबर आफ कामर्स एंड इंडस्ट्रीज) के अध्यक्ष चुने गये। अप्रैल उन्नीस सौ पचहत्तर में इसके वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया। 'फिक्की' का यह अंतिम अधिवेशन था जिसका उद्घाटन इंदिराजी ने किया था। उसके बाद इंदिराजी फिक्की के किसी भी अधिवेशन में नहीं गयीं। अपने उद्घाटन भाषण में श्रीमती गांधी ने कृष्णकुमारजी की प्रशंसा की थी और कहा था :

> "हमें ठोस और सही नीति अपनानी चाहिए।
> और बदलते हुए समय के साथ चलना चाहिए।
> अध्यक्ष महोदय, आपने अपने विस्तारपूर्ण विषद भाषण से मेरे काम को आसान कर दिया है,
> क्योंकि आपने जो कुछ कहा है, वह सब ठोस और रचनात्मक है।"

घनश्यामदासजी भी कृष्णकुमारजी के भाषण से बहुत प्रसन्न हुए थे और इसके लिए उन्होंने उनकी बहुत प्रशंसा की। कुछ समय बाद कृष्णकुमारजी की घनिष्ठता इंदिराजी के साथ और बढ़ गयी। व्यापारियों और उद्योगपतियों में इंदिराजी के सबसे अधिक विश्वास-पात्र व्यक्तियों में वे एक थे। उन्होंने हमेशा इंदिराजी का साथ दिया। यहां तक कि सन उन्नीस सौ सतहत्तर में जब इंदिराजी हार गयी थीं तब भी वे उनके साथ रहे। जनता सरकार के शासन में उन्हें बहुत सताया गया। यहां तक कि उस समय सरकार ने राजनैतिक गतिविधियों के लिए कृष्णकुमारजी के विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट जारी किया। घनश्यामदासजी को पुत्र पर यह संकट देखकर बहुत क्लेश हुआ। कृष्णकुमारजी ने यह सब इंदिराजी को बताया। उन्होंने अपनी संवेदना जाहिर की।

सन उन्नीस सौ अस्सी में जनता सरकार के पतन के वाद जब मध्यावधि चुनाव हुए तो इंदिराजी कृष्णकुमारजी को नहीं भूलीं। इंदिराजी और संजय गांधी दोनों ने कृष्णकुमारजी से कहा कि वे राजस्थान के झुंझुनू क्षेत्र से कांग्रेस (इ) के टिकट पर चुनाव लड़ें। कृष्णकुमारजी ने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा कि उन्होंने वहुत पहले यह निश्चय कर लिया था कि वह फिर कभी लोकसभा के लिए चुनाव नहीं लड़ेंगे। सन उन्नीस सौ अस्सी के चुनाव में विजयी होने के वाद इंदिराजी ने कृष्ण-कुमारजी और श्री जे० आर० डी० टाटा को 'राष्ट्रीय एकता समिति' का सदस्य वनाया। यह अपने आपमें वहुत महत्त्वपूर्ण पद था। पहली वार किसी व्यापारी को इस अत्यधिक शक्तिशाली समिति का सदस्य वनाया गया था। इस प्रतिष्ठापूर्ण पद पर कृष्णकुमारजी के चुने जाने पर घनश्यामदासजी वहुत प्रसन्न हुए थे।

सन उन्नीस सौ चौरासी में कांग्रेस (इ) समर्थित एक स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में उन्होंने राज्यसभा का चुनाव जीता। इस चुनाव में उन्हें राजस्थान में सवसे अधिक वोट मिले।

मध्यावधि चुनाव के वाद अनेक विरोधी राजनीतिक शक्तियां पनप रही थीं। कलकत्ता में ही प्रतिकूल परिस्थितियां पैदा हो गयी थीं। वहीं विड़ला-बंधुओं का आधार क्षेत्र है। समूचे पश्चिमी बंगाल में हड़ताल, घेराव आदि घटनाओं के कारण उद्योगों पर गहरा आघात पहुंचा। ऐसे समय में घनश्यामदासजी ने देश के अन्य राज्यों में नये प्रतिष्ठान बनाने के निर्णय लिये। देश के वाहर उद्योग लगाने की शृंखला भी तभी और आगे वढ़ी। सन उन्नीस सौ सड़सठ में घनश्यामदासजी के पौत्र आदित्य विक्रम ने बैंकाक में 'इंडोलाई सिंथेटिक्स कंपनी लिमि०' की स्थापना की। घनश्याम-दासजी के लिए यह संतोष का विषय था।

कृष्णकुमार विड़ला भी उद्योगों के विस्तार में आगे वढ़े। उन्होंने 'इंडिया स्टीमशिप' कंपनियों के माध्यम से जहाजरानी के क्षेत्र में विड़ला उद्योग को और आगे बढ़ाया। इसी तरह कृष्णकुमारजी ने 'जुआरी एग्रो कैमिकल' स्थापित करके रासायनिक खाद के क्षेत्र में प्रवेश किया। भारी लागत से वना यह उद्योग देश में अपने ढंग का अलग है। दूसरी ओर घनश्यामदासजी के पौत्र आदित्य विक्रम ने थाइलैंड के वाद इंडोनेशिया और फिलीपींस में नये कारखाने लगाये। अव दक्षिण-पूर्व एशिया में विड़लाओं की दस कंपनियां चल रही हैं।

ब्रजमोहनजी के सुपुत्र गंगाप्रसादजी ने अफ्रीका में अनेक उद्योग स्थापित किये। माधवप्रसादजी ने विड़ला-जूट कार्य-क्षेत्र को वढ़ाया और नये-नये उद्योग इस कंपनी

के अंतर्गत लगाये। गंगाप्रसादजी के सुपुत्र चंद्रकांत ने हिंदुस्तान मोटर्स के कार्य को और आगे बढ़ाया। लक्ष्मीनिवासजी के सुपुत्र सुदर्शनकुमार ने 'ओ० सी० एम०', 'यूनिवर्सल इलेक्ट्रिक' और 'दिग्विजय' जैसी कंपनियों का विस्तार किया। गजाननजी के सुपुत्र अशोकवर्धन ने 'जेनिथ स्टील' और 'तुंगभद्रा' का विस्तार किया। 'न्यू स्वदेशी' पुरानी मिल थी। उसका आधुनिकीकरण किया और इलेक्ट्रानिक्स के क्षेत्र में कदम रखा। उद्योग क्षेत्र के इस व्यापक विस्तार में घनश्यामदासजी उद्यम की एक नयी शताब्दी की झलक देखने लगे थे।

सन उन्नीस सौ उन्नीस में बिड़ला-बंधुओं ने उद्योगों की स्थापना की थी। तब कुल बीस लाख रुपये की पूंजी उसमें लगी थी। सातवें दशक तक पहुंचते-पहुंचते बिड़ला उद्योगों का अत्यधिक विस्तार हुआ। अब इनकी दो सौ औद्योगिक इकाइयां हो चुकी हैं। इनके सिवाय सत्तर और उद्योग हैं जिन पर उनका परोक्ष रूप से नियंत्रण है।

घनश्यामदासजी के जीवन में उन्नीस अगस्त उन्नीस सौ चौंसठ का दिन सबसे महत्त्वपूर्ण है। उस दिन साइंस और टेक्नालाजी में उच्च शिक्षा और अनुसंधान के लिए पिलानी में 'बिड़ला इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी एंड साइंस' का उद्घाटन समारोह हुआ। सत्तरवर्षीय घनश्यामदास बिड़ला ने अपने उद्घाटन भाषण में नयी पीढ़ी को संबोधित करते हुए कहा, "मैं शिक्षक नहीं हूं। मैं स्वप्न देख सकता हूं, मैं प्रेरणा दे सकता हूं लेकिन असली काम तो आप ही लोगों को करना है।"

सत्तर साल के अनुभवों से भरी हुई आंखों ने जवान नजरों से नयी पीढ़ी को देखते हुए आगे कहा, "हम अपना भूतकाल पीछे छोड़ आये हैं। हमें तो अब भविष्य की ओर देखना है। ... मेरे स्वप्न की कोई सीमा नहीं। मैं बड़ा ही असंतुष्ट व्यक्ति हूं, क्योंकि मेरे सपने सदा मुझसे आगे निकलते रहते हैं।" आज यह इंस्टीट्यूट इस देश में सबसे अधिक मान्यता प्राप्त है। पिलानी की इस संस्था को घनश्यामदासजी मैसाच्यूसेट्स की संस्था की तरह सर्वांग सुंदर बनाना चाहते थे। 'एम० आई० टी०' में हर चीज नियमित, शिष्ट और साफ है। ... वैसा ही कुछ वे पिलानी में चाहते थे, जो पूरा हुआ। उनकी आधुनिकतम दृष्टि का यह सही परिचय है। वे चाहते थे पिलानी के बी० आई० टी० एस० में शोध-छात्रों को मौलिक और स्वतंत्रतापूर्वक काम करने का मौका मिले, जैसा कि विदेशों में जाकर उन्हें मिलता है। उनका विश्वास था कि अपने जीवन-काल में एक व्यक्ति अपनी संपूर्ण ऊर्जा का केवल बीस या पच्चीस प्रतिशत भाग ही काम में लाता है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यदि 'हर व्यक्ति अपनी

ऊर्जा का पचास प्रतिशत भाग भी प्रयोग में लाये तो कितना अधिक काम हो सकता है।'

वास्तव में घनश्यामदासजी का मूल्यांकन करते समय यह समझ में आ जाता है कि वे एक असामान्य व्यक्ति थे। जैसे-जैसे उनकी आयु बढ़ती जाती थी वैसे-वैसे उनकी क्रियाशीलता भी विकसित हो रही थी। वे इस आयु में भी थकते नहीं थे और न औद्योगिक विकास की चिंतनधारा सूखी थी। जैसे-जैसे उनका जीवन आगे बढ़ा है, वे अपने व्यक्तित्व से समाज की ओर उन्मुख हुए। समाज से राष्ट्र को और अब यहां पहुंचकर वे राष्ट्र की सीमाओं से परे अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रवेश करने लगे, "इस जगह को मैं अंतर्राष्ट्रीय बनाना चाहता हूं—केवल राष्ट्रीय नहीं। हम राष्ट्रीय तो हैं ही··· परंतु व्यावहारिक रूप से हमें अंतर्राष्ट्रीय बनना है।"१७५

डा० घनश्यामदास बिड़ला को जब पद्म-विभूषण मिला तो पिलानी के नागरिकों ने उनको बड़े पैमाने पर अभिनंदित किया था। अभिनंदन-पत्र में पिलानी के नागरिकों ने उन्हें 'सरस्वती सेवक', 'दूरदर्शी', 'एकलव्य', 'वणिक प्रवर', 'यथार्थवादी स्वप्न-द्रष्टा', 'पिलानी के अनुपम शिल्पी' कहकर अपना आदर समर्पित किया।

अभिनंदन का उत्तर जिस तरह घनश्यामदासजी ने दिया, वह उनके व्यक्तित्व के अनुरूप था, "मैं आप लोगों के बीच एक नया-सा आदमी लगता हूं—वह इस कारण कि जिस युग में मेरा जन्म हुआ, उस जमाने के लोग करीब-करीब हट गये हैं··· देखता हूं आप लोगों को, मुझे बड़ी खुशी होती है। किंतु मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि कोई नवीन आदमी नहीं हूं, इस गांव में खेला···और मेरा प्राण इसी गांव में पड़ा है। मैं संकुचित आदमी नहीं हूं, भारतवर्ष की सेवा करना चाहता हूं। हम यहां भविष्य के नागरिक पैदा कर रहे हैं। यहां कोई भेदभाव नहीं है।"

उस क्षण घनश्यामदासजी उन स्मृतियों में लौट गये, जहां उन्होंने कभी "पिलानी में एक छोटा-सा पौधा लगाया। और मैं तो क्या पढ़ा, कुछ वहां विशेष पढ़ा भी नहीं। गलियारों में, धूल में वहां हम लोग खेलते थे उस जमाने में। अब तो वह एक पुरानी कथा हो गयी। किंतु आज से पैंतीस साल पहले एक जवान आदमी आया और उसने लगातार परिश्रम के बाद एक चीज बनायी···।" इस कथा को कहते-कहते विशेषकर 'बुड्ढा' शब्द पर ठहाका मारकर हंस पड़े और पास में बैठे बी० आई० टी० एस० के कुलपति शुकदेव पांडे की ओर देखने लगे। इस पर सारे दर्शक हंसते-हंसते

१७५. बी. आई. टी. एस. का उद्घाटन भाषण, १९ अगस्त १९६४

लोट-पोट हो गये। यह देखकर घनश्यामदासजी ने अपनी सदाबहार तरुणाई का रहस्य बताया, "मैं रोज नियमित रूप से पांच मील बड़ी तेजी के साथ घूमता हूं। डंड भी निकालता हूं और बैठक भी करता हूं। कम खाता हूं।"१७६

आम लोग सोचते हैं कि उम्र के हिसाब से जीवन की सीमाएं होती हैं। साठ-सत्तर साल का होते-होते व्यक्ति सुनने लगता है कि "अब आप बूढ़े हो गये, वानप्रस्थ आश्रम में जाइए, कामधंधा बच्चों पर छोड़ दीजिए।" घनश्यामदासजी इस रुग्ण मानसिकता के विरोधी थे। क्यों बुड्ढा हो व्यक्ति ? बुढ़ापे को वह एक संक्रामक बीमारी मानते थे।

छठे दशक के अंत में घनश्यामदासजी ने कलकत्ता छोड़ दिया। उनके समवयस्क साथियों में वह चुस्ती नहीं थी। इसलिए वे बंबई चले गये। अधिकतर वे बंबई में ही रहने लगे। वहां उनके भाई रामेश्वरदासजी रहते थे। वैसे भी दोनों का अत्यधिक स्नेह था। जब तक रामेश्वरदासजी जीवित रहे, घनश्यामदासजी उन्हीं के साथ रहते। इक्कीस अप्रैल उन्नीस सौ तिहत्तर को रामेश्वरदासजी का देहांत हो गया। रामेश्वरदासजी की मृत्यु से उन्हें गहरा सदमा पहुंचा। उसके बाद वे आदित्य विक्रम के पास रहे, लेकिन उनका मन उखड़ चुका था। वैसे भी स्वभाव से वे मनमौजी थे। प्रकृति से उन्हें अगाध प्रेम था। संभवतः इसीलिए उन्होंने सन उन्नीस सौ पैंसठ में बंगलौर से बीस किलोमीटर दूर बेनारगेटा रोड के जंगल में 'वन-विहार' नाम का एक 'हाली डे रिसार्ट' बनवाया था। यहां भी आधुनिक और सनातन का समन्वय है। स्वीमिंग पूल के साथ-साथ राधाकृष्ण का मंदिर है। पाश्चात्य आरचर्ड के साथ परंपरागत भारतीय उद्यान का सामंजस्य है। एक ओर डेसिनिया, अरेलिया, ट्यूबूबिया, पिल्टू पारम क्रिसमस ट्री हैं और दूसरी ओर आम, कटहल, नींबू, नारियल, अशोक आदि वृक्ष लहलहा रहे हैं। बंगले के फाटक के भीतर ही जहां ट्यूबूबिया का पेड़ पीले फूलों से जगमगाता है, वहां रिसेप्शन और टेलिफोन का पी० बी० एक्स० बूथ बना हुआ है। जब कभी अवसर मिलता, घनश्यामदासजी वहां जाते और एकांत-वास करते थे। इसके साथ-साथ उनका चिंतन और लेखन भी चलता रहता था, क्योंकि एक पल भी बेकार बैठना उनकी प्रवृत्ति में नहीं था।

रामेश्वरदासजी के बाद अपने उखड़े मन को घनश्यामदासजी ने तीर्थाटन और यात्राओं में लगा दिया, जिनकी चर्चा आगे की जायेगी।

---

१७६. घनश्यामदासजी द्वारा अभिनंदन का उत्तर

शब्द-स्वर-रंग-लय

काशी में शरद ऋतु का एक दिन था। पिता राजर्षि बलदेवदास और पुत्र घनश्यामदास बिड़ला के बीच अंतरंग बातचीत हो रही थी। विषय था—'आत्मदेव की उपासना' क्या है ? पिताश्री प्रातःकाल-मंत्र, सायंकाल-मंत्र और अनुशासन को आत्मदेव की उपासना की संज्ञा दे रहे थे और अंतःकरण की पवित्रता पर आग्रह कर रहे थे। पिताश्री ईसावास्य वृहदारण्य और कठोपनिषद् के मंत्रों का उद्धरण देकर इस बिंदु पर आये थे :

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये।

सुनहले पात्र से सत्य का मुंह ढका हुआ है। उसे तू, हे पूषण पोषण करने वाले, सत्य-धर्म को देखने के लिए खोल दे।

बात सन उन्नीस सौ पैंतीस की है। पिता की दृष्टि उस समय पुत्र को पूषण के रूप में देख रही थी। पिता की उस दृष्टि में कुछ ऐसा था कि घनश्यामदासजी को भी लगने लगा वे 'पूषण' ही तो हैं। उन्हें याद आ गयी वह कथा जो उन्होंने बचपन में दादा सेठ शिवनारायणजी से सुनी थी—उस वर्ष पिलानी में भयंकर अकाल पड़ा था। "युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ कर रहे थे। अचानक यज्ञ-स्थल में एक नेवला घूमता दिखायी दिया। उसका आधा शरीर सोने का था। जब उससे पूछा गया कि उसका शरीर ऐसा क्यों है, तो उसने बताया कि एक बार अकाल के दिनों में वह एक ब्राह्मण के घर पहुंचा। कई दिनों बाद थोड़ी-सी रोटियां मिली थीं। ब्राह्मण अपने परिवार के साथ भोजन करने बैठा ही था कि भूख से व्याकुल एक भिखारी वहां आ पहुंचा। ब्राह्मण ने अपना और परिवार का सारा भोजन उसे खिला दिया। नेवले ने कहा कि

उसने जैसे ही उस जगह पर गिरे रोटी के चूरे को खाया, वैसे ही उसका आधा शरीर सोने का हो गया। आज वह यहां इसलिए आया था कि शायद इतने महान यज्ञ के स्थान पर जूठन खाकर उसके शरीर का बाकी भाग भी वैसा ही हो जाये, लेकिन वैसा हुआ नहीं।''

दादा ने कहानी सुनाने के बाद पौत्र को समझाया था कि दान की महिमा दान की वस्तु में नहीं, उसके पीछे जो त्याग है तथा दान देने वाला कौन है, उसमें निहित है।

उस कहानी के साथ-ही-साथ अंग्रेजी की वह कविता भी याद आयी जो घनश्यामदासजी ने अपनी तरुणाई के दिनों में पढ़ी थी। एक बूढ़े आदमी ने शाम के धुंधलके में मुश्किल से एक भरा हुआ नाला पार किया। दूसरी ओर पहुंचते ही उसने नाले पर पुल बांधना शुरू कर दिया। एक व्यक्ति ने जो उसके साथ था, बूढ़े से पूछा, ''जब आप नाला पार ही कर चुके हैं तो फिर क्यों पुल बांध रहे हैं? आपके जीवन में अब दिन ही कितने बचे हैं, क्या आप फिर से इस नाले के पार जाने के लिए वापस आएंगे?''

बूढ़े ने उत्तर दिया, ''बहुत से होनहार युवक मेरे बाद आएंगे। उनके लिए ही यह पुल है, ताकि वे अंधेरे में भटककर इसमें गिर न जाएं।''

आत्मदेव की उपासना पर पिता से जो बातें हुईं, उनसे घनश्यामदासजी को समझ में आया कि उपासना दो प्रकार से होती है, एक अंतःकरण से, दूसरी शरीर से। मन और वाणी के द्वारा जो उपासना होती है, वह अंतःकरण की उपासना होती है और आत्मसमर्पण के भाव से जो कर्म शरीर द्वारा संपन्न होते हैं, वही आत्मदेव की उपासना है।

घनश्यामदासजी का जीवन दोनों प्रकार की उपासनाओं की 'एक' सफल अभिव्यक्ति है। 'एक' इसलिए कि जो उनके अंतःकरण की उपासना है, वही उनके आत्मदेव की उपासना है। इस उपासना की अभिव्यक्ति एक ओर तो हुई है उद्योग, व्यवसाय, स्वतंत्रता-प्राप्ति-यज्ञ और प्रतिष्ठान-निर्माण में, दूसरी ओर वह प्रकट हुई है—शब्द, स्वर, रंग और लय में।

घनश्यामदासजी के पितामह की ''प्रथम यात्रा का संचित धन प्रायः हवेली, कुएं और शिवालय में खर्च हो गया। तब फिर उन्होंने बंबई की ओर प्रस्थान किया।''[१७७] ठीक उसी तरह घनश्यामदासजी की जीवन-यात्रा के पहले चरण का संचित धन उद्योग, व्यापार, स्वतंत्रता-आंदोलन आदि पर व्यय हो गया।

---

१७७. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ १२

पिलानी की हवेली में बाप-दादा द्वारा खीची हुई जीवन-मर्यादा की रेखाओं के भीतर रहकर जिस जिज्ञासा से शब्दकार घनश्यामदासजी ने अपने जीवन और बाह्य सृष्टि को देखा, लगा कि शरद ऋतु के आकाश में बिजली चमकी है, मेघ गरजा है, धरा को रसमय बनाने के लिए ।

सन उन्नीस सौ अट्ठाईस में 'वे दिन' नामक आत्मकथात्मक संस्मरणों से उनका लेखन-कार्य शुभारंभ हुआ । अपने जन्म-काल से अतीत के इतिहास के साथ शब्दों का नीड़ तैयार किया है—ग्रंथकार घनश्यामदासजी ने । 'वे दिन' नीड़-स्मृति की ही संस्मरणात्मक कथा है । यह किसी विशेष देश की बात नहीं है । बात रामनवमी के दिन जन्मे घनश्यामदासजी की ही है । "मेरा जब जन्म हुआ तो मेरे माता-पिता सुखी और संपन्न थे । इसके कई वर्ष पहले मेरे पितामह ने धन-उपार्जन कर लिया था ।··· ईस्ट इंडिया कंपनी का जमाना था ।··· उन दिनों पिलानी से बंबई जाना एक बड़ी समस्या थी। मेरे पितामह ने पिलानी से अहमदाबाद तक ऊंट पर सफर किया ।" यह बात यद्यपि पिलानी की है, पर जिस भाषाशैली में घनश्यामदासजी ने लिखा है, उससे 'वे दिन' की बात समस्त मानव-जाति की बात हो जाती है । क्योंकि स्मृति-जगत में मानव-मात्र का मिलन होता है। विश्व-मानव का वास-स्थान एक ओर पृथ्वी है तो दूसरी ओर मनुष्य का स्मृति-लोक। इस तरह लेखक पिलानी की पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करता है और अपनी जीवन-यात्रा को इतिहास में सुरक्षित रखने का आत्म-विश्वास लेकर चलता है ।

संस्मरणात्मक अनुक्रम में 'वे दिन', 'मेरा शिक्षण', 'मुझसे सब अच्छे' और 'प्रेमी की व्याकुलता'—ये गद्य रचनाएं हैं । इस पूरे अनुक्रम का आरंभ घनश्यामदासजी की बचपन की स्मृतियों से होता है । अपने बचपन में वही तो लौट सकता है जो बचपन के विश्लेषण करने की प्रौढ़ता प्राप्त कर सकता है । वे बात शुरू करते हैं अपने जन्म से । संवत उन्नीस सौ इक्यावन की रामनवमी के दिन मेरा जन्म हुआ । पर दूसरे ही वाक्य में वे अपने पिताजी और मां की आयु की बात करने लग जाते हैं । अपने जन्म की बात पीछे छोड़ देते हैं और माता-पिता की लंबी आयु की बात का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन करने लगते हैं । आगे एक गणितज्ञ की तरह निष्कर्ष निकाल लेते हैं, "कि भगवान सारी सुविधाएं दे, तो लंबी आयु एक आशीर्वाद है । इसमें मीन-मेख हो, तो वह शाप है ।"

'शाप' की बात आते ही वे पांडवों की कथा से जुड़ जाते हैं । पूरी कथा नहीं कहते, केवल संकेत करके 'आत्म विचार' पर पहुंच जाते हैं, "मतलब ये कि जब तक शरीर

से कुछ भलाई हो, तब तक उसका संग रखना और जब उसका अभाव हो, तब त्याग करना।''

पांडवों की अंतिम मृत्यु-योजना का विश्लेषण कर वे अपने जन्म की बात पर लौटते हैं और माता-पिता से पितामह की दुनिया में चले जाते हैं। वहां से वे फिर इतिहास में जाकर देखने लगते हैं कि ईस्ट इंडिया कंपनी का वह कैसा जमाना था। उस जमाने से उनके पितामह-प्रपितामह से क्या संपर्क था, उस सूत्र को पकड़ने लगते हैं, ''अजमेर और मऊ की छावनी में बड़े साहबों का निवास था और इनका साहब लोगों से काफी संपर्क था। जब मेरे प्रपितामह मरे तो मेरे पितामह करीब सोलह साल के थे। मालिकों ने इस जवान लड़के को भी अपने पिता के स्थान पर नौकरी में आ जाने का प्रस्ताव किया, पर इनकी स्वतंत्र प्रकृति और उच्चाभिलाषा के कारण नौकरी ने इन्हें आकर्षित नहीं किया और अपनी माता की इजाजत लेकर वह बंबई की ओर अपना भाग्य आजमाने को चल पड़े।''१७८

अपने कुल-वंश की छिपी हुई परतों को खोलकर वे पाठकों को यह बताना चाह रहे थे कि उनके (घनश्यामदासजी के) जीवन के जो दो आधारभूत तत्त्व थे--'स्वतंत्र प्रकृति' और 'उच्चाभिलाषा'--उनके स्रोत क्या थे।

इसके बाद वे अपने परिवार की परंपरा का ज्ञान कराते हैं। परिवार की परंपरा किस तरह कठिन परिश्रम, भगवान के प्रति गहरी आस्तिकता और धर्मभीरुता से जुड़ी हुई थी, इसके लिए लेखक घनश्यामदासजी परिवार की अनुशासित जीवन-चर्या का विस्तार से वर्णन करते हैं। फिर यह बता देते हैं कि उनका भी बचपन का जीवन उतना ही कठोर था जितना कि अन्य राजस्थानी धनिकों का होता है। पर इस सबके भीतर जो महत्त्वपूर्ण बात है, उसे सूत्र वाक्य में कहना नहीं भूलते--'पर किसी में इस कष्ट का अखरना नहीं देखा। अनिवार्य समझकर लोग इसको कष्ट नहीं मानते थे।''

परिवार की इसी कठोर राजस्थानी जीवन की परंपरा में यम-नियम का क्या स्थान है, ईश्वर में श्रद्धा का क्या स्थान है, कठोर जीवन से व्यक्ति के स्वभाव पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस सबको अपने पूरे जीवन से जोड़कर वे शब्दबद्ध कर देते हैं--'हाथ काम, मुख राम, हिरदे सांची प्रीत।'

अपनी हवेली, अपने घर-परिवार से बाहर निकलकर वे अपने गांव पिलानी

१७८. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ ११

का चित्र खींचने लगते हैं। उसका इतिहास, उसकी जनसंख्या, उसका लोक-जीवन, रस्मो-रिवाज, गाना-रोना, सबकी चर्चा करते हुए वे यह बताना भी नहीं भूलते कि इस सबके पीछे कारण क्या है ? लेखक से फिर वे समाजशास्त्री बन जाते हैं। फिर अपने बचपन के पूरे समाज का जायजा लेने लगते हैं। ऐसे तमाम व्यक्तियों को अपने शब्द-चित्रों में बांधने लगते हैं, जिनका उनके ऊपर किसी-न-किसी रूप में प्रभाव पड़ा है, जैसे--स्वामी चरणदास, कनिराम तोला, सरूपा खाती, पहलवान कमरदी इलाही, गीगलिया, डाकिन वर्जली ।

लेखक घनश्यामदासजी ने इस प्रसंग का अंत किया है राजस्थान में पड़े दुर्भिक्ष और अकाल की भयंकरता के वर्णन से । संपन्नता और अकाल की इस पृष्ठभूमि और वातावरण में वे जन्मे और पले । उनका कहना था कि इसकी उन्हें खुशी है। यही उनकी भाषा और रचना-शैली की विशेषता है। वे कहां-से-कहां तक जाकर चुपचाप फिर लौट आते हैं अपने जीवन के मूल विषय पर ।

फिर जब अपने शिक्षण के विषय पर आते हैं तो उसे जैसे कहानी का रूप देने लगते हैं । स्वयं उनके ही शब्दों में, "यह एक अजीब-सी कथा लगने लगती है ।" अपने गुरुओं का चरित्र-चित्रण करते हुए उनकी भाषा कहीं भी संयम और मर्यादा नहीं भूलती । गुरु से सीखने के प्रति अपनी अरुचि को काफी कड़े शब्दों में उन्होंने व्यक्त किया है, फिर भी उसमें संयम बरकरार है । अपनी शिक्षा की कथा बताते वे अनेक संबद्ध विषयों के तारों को छूते चलते हैं,जैसे, "मैं कोरी श्रद्धा का बिलकुल हिमायती नहीं हूं ।··· शिक्षा कैसी हो ? आज की परीक्षा को बदल देना चाहिए ।··· छात्र की सफलता-असफलता का निर्णय उसके ज्ञान और व्यवहार, उसकी नेतृत्व-शक्ति से करना चाहिए।" यह सब लिखते हुए वे पाठक की स्थिति को कभी नहीं भूलते । स्वयं को याद दिलाते हुए पाठक से भी कह बैठते हैं, "यह विषयांतर हो गया ।"

बस, इतना ही लिखकर अपनी जीवन-कथा समाप्त कर देते हैं। इससे अधिक अपने विषय में कहना, जैसे उन्हें संकोचपूर्ण लगता है ।

इसके बाद ही वे दूसरों के बारे में लिखने लगते हैं और अपनी विनम्रता को प्रकट करते हैं 'मुझसे सब अच्छे' निबंध में। उनके व्यक्तित्व में कवि की सहृदयता स्पष्ट होती है। हवा और ऊंट का बोलना केवल कल्पना नहीं है, घनश्यामदासजी ने उनके माध्यम से लाक्षणिक रूप से अपने धैर्य की कथा कही है ।

मनुष्य के चरित्र में वे जिन गुणों को देखना चाहते थे, वे उनके रेखाचित्रों

में प्रकट है। सबसे पहले उनकी लेखनी जमनालालजी को चित्रित करती है। फिर क्रमशः जवाहरलाल नेहरू, महादेव देसाई, ठक्कर बापा और मणि बेन को विशेष ढंग से चित्रित किया है। इन रेखाचित्रों में उन्होंने अपनी लेखनी को चित्रकार की कूची की तरह व्यवहृत किया है। जैसे जवाहरलाल नेहरू को सबसे निराले कहकर इस तरह चित्रित किया है, "उन्हें किस चीज ने बड़ा बनाया, यह बताना असंभव है। बात यह है कि वह बड़े हैं।"

'हीरा', 'नाहरसिंह' और 'बाबा खिचड़ीदास' इन तीनों रचनाओं ने रेखाचित्रों से विकसित हो अनायास कहानी का रूप धारण कर लिया है। जैसे लेखक के हाथों से मुक्त होकर उन्होंने स्वयं अपना आकार ले लिया है। जिन चारित्रिक विशेषताओं ने घनश्यामदासजी को आकृष्ट किया, उन्हें उन्होंने सामान्य लोगों में देखा है। इस प्रयत्न में उन्हें सुदूर और धुंधले अतीत में प्रवेश करना पड़ता है, "प्रवेश करने पर मुझे लगता है कि मैं एक ऐसे स्थान पर पहुंच गया हूं, जहां चारों ओर केवल कोहरा ही कोहरा है।...आंखें फाड़-फाड़कर एकटक देखता हूं तो भी उसकी रूप-रेखा स्पष्ट नहीं दिखायी देती।...पर जो चित्र उस समय आंखों पर खिच गया है, वह एक ऐसे फोटो की तरह है जो किसी अनाड़ी चित्रकार ने खींचा हो और जिसे खींचने में न तो उस चित्रकार के कैमरे की दृष्टि को ठीक एकाग्र किया हो और न रोशनी ही सही दी हो।"[१७९] इन तीनों कथाओं के लिखने में घनश्यामदासजी ने शब्द, रंग और कैमरे की एकाग्र दृष्टि, तीनों का ही सफल प्रयोग किया है।

'रूप और स्वरूप' के अंतर्गत घनश्यामदासजी ने जीवन के सूक्ष्म और स्थूल दोनों पहलुओं का विवेचन किया है।

'रुपये की कहानी' कहते हुए घनश्यामदासजी की व्यावहारिक अर्थनीति और सूक्ष्म अर्थ-दृष्टि की अभिव्यक्ति होती है। नीरस और शुष्क विषयों को भी उन्होंने कथा की प्रांजल शैली में कहकर पाठकों के लिए रुचिकर बना दिया है।..."रुपये की कथा जितनी रोचक है, उतनी जटिल नहीं है। जटिल थोड़ी-सी है, तो अर्थशास्त्रियों ने बड़ी-बड़ी पेचीदा शब्दमाला का प्रयोग करके इसे और भी जटिल बना दिया है। सीधी भाषा में लिखने से यह संभव है कि हम इसे सरल बना दें।" और इसी तरह सीधी-सीधी कथात्मक भाषा में बात करते-करते वे गिरावट और फुलावट सट्टा, फाटका, फ्यूचर मार्केट आदि संश्लिष्ट शब्दों को भी पाठकों के लिए एकदम

१७९. 'बिखरे विचारों की भरती', पृष्ठ ९३

सरल और बोधगम्य बना देते हैं। इतना ही नहीं, वर्तमान आर्थिक संकट, जो आम लोगों के लिए एक अजीब पहेली है, उसे भी 'पानी में मीन पियासी' लोकोक्ति के सहारे समझा दिया है।

बीसवीं शताब्दी का दूसरा दशक भारतीय जनता के लिए विचित्र था। आस-पास शायद ही कोई सही अर्थों में जान पाता था—भारत में इतनी गरीबी क्यों है? इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं मिल रहा था। "गांधीजी ने मुझसे कहा, हिंदी में हुंडी और चलण पर एक ऐसी सरल पुस्तक लिखो जो हर कोई आसानी से समझ सके। सारी कहानी दो हिस्सों में सुनायी गयी है ··· मीमांसा भाग मैंने लिखा और इतिहास भाग श्री पारसनाथ ने।"१८० लेखकीय ईमानदारी का यह एक उदाहरण है। श्री पारसनाथ पहले घनश्यामदासजी के सेक्रेटरी थे। बाद में हिंदुस्तान टाइम्स का काम देखने लगे।

इसी ईमानदारी के कारण रुपये जैसे घोर भौतिक विषय के साथ 'बोध सूत्रों' को जोड़कर उन्होंने संपूर्ण दृष्टि से उसका मूल्यांकन कर दिया।

'देश-विदेश में' जहां जैसे घनश्यामदासजी गये, घूमे, उसे भी शब्दबद्ध करना उन्होंने उचित समझा। विदेशों में उन्होंने जैसा जीवन देखा, उसे वैसा ही चित्रित किया। भारत के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने उसका विश्लेषण करके उसे भारतीय पाठकों के लिए हिंदी में प्रस्तुत किया, ताकि यहां की जनता को बाहरी दुनिया का ज्ञान हो।

गोलमेज परिषद में भाग लेने के लिए अगस्त उन्नीस सौ इकतीस में गांधीजी के साथ जहाज पर यात्रा करते ही घनश्यामदासजी को लगा कि इस यात्रा का महत्त्व ऐतिहासिक है। इसकी गतिविधियों का एक निरपेक्ष तटस्थ और विस्तृत वर्णन डायरी के रूप में रखना होगा ताकि इतिहासकारों के लिए वह एक दस्तावेज का काम दे। डायरी-लेखन या डायरी के कुछ पृष्ठों के रूप में जो कुछ भी सामने है, उसमें सीधे-सादे ढंग से पते की बातें की गयी हैं। उस समय प्रतिदिन होनेवाले वाद-विवाद, मुलाकातें, घटनाएं घनश्यामदासजी को इतनी महत्त्वपूर्ण लगीं कि वे अत्यंत सरल तरीके से उनका वर्णन करते चले गये और यही सरलता, अनायास स्पष्टोक्ति डायरी के लेखन की एक विशिष्ट शैली बन गयी। महत्त्व के प्रसंगों को बिना किसी पूर्वाग्रह के हल्के-हल्के डायरी के पृष्ठों पर उतारकर रख दिया है।

१८०. रुपये की कहानी : समर्पण से

डायरी-लेखन में घनश्यामदासजी का इतिहासकार उनके भाव-पक्ष और विचार-पक्ष दोनों पर हावी रहता है और इसी कारण स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहासकार जैसे डा० बिपिनचंद्र ने अपनी इतिहास की पुस्तक 'नेशनलिज्म एंड कलोनियलिज्म इन माडर्न इंडिया' में घनश्यामदासजी की डायरी का उपयोग किया है। घनश्यामदासजी ने डायरी जैसे गद्य-लेखन में भी व्यंग्य और विनोद का स्वाभाविक पुट देकर पाठकों के लिए बात को ग्राह्य और मनोरंजक बनाने का प्रयास किया है।

आधुनिक कथा में हमारी आख्यान शैली का क्या उपयोग हो सकता है, इसके उदाहरण में घनश्यामदासजी द्वारा लिखित ध्रुवोपाख्यान उल्लेखनीय है। कहानी के परे कथा और उपाख्यान शैली की प्रेरणा के पीछे घनश्यामदासजी का स्वाध्याय है। भारतीय परंपरा के दर्शन और धर्म-ग्रंथों के मनन से वे इस ओर उन्मुख हुए।

'गंगोत्री' और 'जमुनोत्री' की सनातन महिमा को अपनी विशेष शैली में लिखकर घनश्यामदासजी ने एक नयी दिशा दोनों पुण्य सरिताओं को दान की है। पौराणिक आख्यान और तीर्थ स्थानों को इतिहास, विज्ञान और अध्यात्म के समन्वित धरातल पर उतार दिया है। इन रचनाओं में संस्कृत शैली की गरिमा के साथ हिंदी की सरलता का अनोखा सम्मिश्रण दिखायी देता है। उनकी अधिकांश रचनाएं 'बिखरे विचारों की भरोटी' में संकलित हैं।

घनश्यामदासजी के गद्य-लेखन का उत्कृष्ट उदाहरण है गांधीजी की जीवनी, जिसका शीर्षक है--'बापू'। "यदि भगवद्गीता के बारे में लिखना आसान हो तो गांधीजी के बारे में लिखना आसान हो सकता है··· क्योंकि भगवद्गीता पर लिखा हुआ भाष्य न केवल गीता-भाष्य होगा बल्कि भाष्यकार के जीवन का वह दर्पण भी होगा।"१८१ निश्चय ही 'बापू' रचना जीवनीकार घनश्यामदासजी के जीवन का वह दर्पण है जिसके भीतर से उन्होंने महात्मा गांधी को देखा है। गीता सबके लिए जैसे एक खुली पुस्तक है, उसी तरह गांधीजी का जीवन भी एक खुली पुस्तक है। प्रायः ऐसा ही सब लोग मानते हैं, लेकिन घनश्यामदासजी की राय इससे बिलकुल अलग है। 'बापू' में उन्होंने लिखा है, "वह एक ऐसे व्यक्ति हैं जो किसी तरह पकड़ में नहीं आ सकते··· ।"१८२ गांधीजी के विषय में इस तरह की बात केवल घनश्यामदासजी

१८१. महादेव देसाई, बापू की भूमिका
१८२. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ २०

ही कर सके हैं। उन्होंने गांधीजी के साथ-साथ जीवन के अनेक रूपों को जिया है और उनके चरित्र के परस्पर विरुद्धधर्मी तत्त्वों को हृदयंगम किया है।

'बापू' पुस्तक घनश्यामदासजी के जाग्रत अध्ययन, अनुभव और समालोचन का एक सुंदर फल है। उन्होंने छोटी-छोटी बातों में गांधीजी की महत्ता को देखने का सार्थक प्रयत्न किया है। गांधीजी से पहले-पहल मिलने के बाद घनश्यामदासजी ने उन्हें एक पत्र लिखा। जवाब में एक पोस्टकार्ड आया, "जिसमें पैसे की किफायत तो थी ही, पर भाषा की भी किफायत थी।" बात तो मामूली-सी है, पर उसमें गांधीजी के जीवन की एक कुंजी उन्हें मिल जाती है। इस तरह 'बापू' नामक जीवनी ऐसी ही कुंजियों से भरी पड़ी है, जो उनके चरित्र की एक-एक विशेषता को खोलती चलती है।

गांधीजी की आत्मकथा प्रसिद्ध है, पर गांधीजी के जीवन के कुछ पक्षों पर घनश्यामदासजी ने जैसा भाष्य किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। पूरी पुस्तक घनश्यामदासजी की तलस्पर्शी परीक्षण-शक्ति का अच्छा नमूना है।

बापू की जीवनी का पहला वाक्य है, "गांधीजी का जन्म अक्तूबर सन अठारह सौ उनहत्तर में हुआ।" और दूसरा वाक्य है, "इस हिसाब से वह इकहत्तर वर्ष समाप्त कर चुके।" इस तरह कहकर वे उद्घोषणा करते हैं कि इकहत्तर वर्ष का इतिहास, अनुभव, संघर्ष और उपलब्धियों का वे रूप बांधने जा रहे हैं।

आत्मकथा और संस्मरणों में तथ्यपरक, अनुभूतिपूर्ण विश्लेषण है, 'बापू' में भावनापूर्ण तलस्पर्शी विवेचन है।

आत्मकथा लिखते हुए उन्होंने एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। उनका व्यक्तित्व अल्पभाषी था, वे कभी भावुकता के वशीभूत होकर उसी में बह नहीं जाते थे। लेखन में भी उन्होंने शब्दों का व्यवहार नाप-तोल कर किया है—जैसे वे शब्द न होकर अंक हों, जरा-सी कमोबेशी होने से गड़बड़ी हो सकती है। इसीलिए उन्होंने बहुत-कुछ सोच-समझकर ही विशेषणों का इस्तेमाल किया है, ताकि भाषा पर अनावश्यक बोझ न पड़े।

उनके लेखन की एक विशेषता और थी। अपने विषय में भी लिखते हुए वे अपने व्यक्तिगत को छिपाये रखने का पूरा-पूरा प्रयास करते थे।

घनश्यामदासजी की संवेदनशीलता और उनके प्रौढ़ विचारों का परिपाक ही उनकी शैली बनकर सामने आयी। उन्होंने प्रयत्न से किसी शैली विशेष को

अपनाने की चेष्टा नहीं की है। जिन घनश्यामदास बिड़ला ने विद्या की उपासना को सर्वोत्तम माना, उनका साहित्य-पक्ष उसी अनुपात में समृद्ध और हृदयग्राही है। वे शब्द, वाणी और प्राण के पारस्परिक संबंध-बोध से पूर्णतया परिचित थे। इसका उदाहरण उनकी रचना 'कृष्णं वंदे जगद् गुरुम्' है। भागवत् धर्म की सुंदर विवेचना प्रस्तुत करता हुआ महाभारत के प्रमुख चरित्रों तथा विचारों की महावाणी का उद्घोष करने वाला है यह ग्रंथ। कृष्ण को केंद्र-बिंदु मानकर, 'चरत भारत जनाः संस्कृति हिताय, मानव हिताय' को प्रस्तुत करती है यह कृति। 'कृष्णं वंदे जगद् गुरुम्' आत्म से अध्यात्म तक की यात्रा है जो अपने में रस, भाव, विचार और तथ्य सब कुछ लिये चलती है।

बहुत पहले मालवीयजी ने घनश्यामदासजी से कहा था, "जीवन-चरित पढ़ना हो तो भागवत पढ़ो।" मालवीयजी का यह वाक्य उनके अंतर में बैठ गया। उसी का फल है यह रचना—भागवत और महाभारत के अथाह ज्ञान-समुद्र के अवगाहन से प्राप्त। इस कृति की रचना करते समय ऐसा लगता है, घनश्यामदासजी का यह अनुभव था कि हर सफल जीवन भागवत और महाभारत के चौखटे में समा जाता है। यह विश्वास उनके संपूर्ण लेखन में चरितार्थ है कि वाणी का सच्चा वही है, जो ऐसे शब्द बोलता है और लिखता है जिससे सुनने और पढ़ने वाले के प्राणों से सत्य जन्म ले, शिवम् और सुंदरम् अनुप्राणित हो।

जहां शब्द की पहुंच नहीं है, वहीं स्वर के कार्य का प्रारंभ होता है। अकथ बातों को प्रकट करने की शक्ति गायन में है। कम लोग जानते हैं कि वे एक अच्छे गायक भी थे। शब्द जो बात प्रकट नहीं कर सकते, गायन उन्हीं की अभिव्यक्ति है। ठीक इसी भाव से घनश्यामदासजी 'शब्द' से 'स्वर' की भूमिका में आते हैं। जीवन की जिस अवस्था में यह बात घनश्यामदासजी की समझ में आयी, उस समय स्वर-साधना के लिए उनके पास समय नहीं था। इसलिए संगीत की ओर वे मात्र आनंद प्राप्त करने की भावना से उन्मुख हुए। संगीत के प्रति अनुराग का संस्कार उन्हें पिलानी में ही मिला था। जब ठाकुरजी के सामने स्वामीजी गाते थे—"एक नवल नार, करके सिंगार, ठाढ़ी अपने द्वार, प्रिया निकस बहार, एक पलक मार, मन मेरो हरि लीन्हों।" तब मैं, कलियुगी आदमी कहकहा मारकर हंस देता था, किंतु स्वामीजी तो अपने मन में भजन ही गाते थे। ग्यारह की रात और ठाकुरजी के सामने उन्हें रिझाने को, मुझे याद है, एक बार स्वामीजी ने गाया :

उड़ो रे हंसा जाओ गगन में,
खबरा लाओ मेरे प्रीतम की ।
मैं प्रीतम की, प्रीतम मेरा,
गाठां घुल गयीं रेशम की ।"१८३

सन उन्नीस सौ इकहत्तर में घनश्यामदासजी ने एक इलेक्ट्रानिक साज खरीदा, जिस पर मूल स्वर निकालकर वे प्रायः भजन गाते थे । घनश्यामदासजी पर भक्ति संगीत का अमिट प्रभाव था । जब कभी वे स्वांतः सुखाय गाते थे तो भक्तकवि मीरा, सूर, तुलसी आदि के पद ही गाया करते थे। भक्ति संगीत सुनने में उनकी गहरी रुचि थी ।

भजनों में कबीर का 'साधो सहज समाधि भली' और तुलसीदास का 'जब जानकीनाथ सहाय करे' उनके लिए विशेष महत्त्व रखते थे। 'जंह जंह घूमो सोइ परिकरमा, जो कुछ करूं सो पूजा' यही तो जैसे घनश्यामदासजी ने अपने जीवन का सिद्धांत बना रखा था। जीवन की उपलब्धियों को वे अपनी नहीं मानते थे, उन्हें जानकीनाथ की कृपा समझते थे । तभी वे उन भजनों को अक्सर गाया करते थे। उन्हें गाना सुनने का भी शौक था । बंगलौर के 'वन-विहार' में जब वे जाते, तब कभी-कभी प्रसिद्ध गायिका सुब्बुलक्ष्मी से वही भजन, पद और वैष्णव राग सुनते जो सदा से उनके तपस्वी जीवन के अनुरूप थे । उनका विश्वास था गायन पर शब्द का भार जितना कम पड़े, उतना ही अच्छा है। जब स्वतंत्रतापूर्वक बढ़ने के लिए राग-रागिनियों को अवसर प्राप्त होता है, तभी वे हमारे प्राणों को मुग्ध कर देती हैं और साथ ही गायन को पूर्णत्व तक पहुंचा देती हैं ।

संगीत के संदर्भ में घनश्यामदासजी से अक्सर लोग पूछते थे, "आपका गुरु कौन है ? आपने संगीत किससे सीखा ?"

घनश्यामदासजी कहते थे, "मेरा कोई गुरु नहीं है । मैंने अपने आप ही इसे सीखा है । बिलकुल अकेले ।"

किसी प्रश्नकर्ता ने फिर पूछा, "क्या मैं भी अपने आप अकेला सीख सकता हूं ?"

घनश्यामदासजी ने कहा, "मैंने यह सवाल किसी से नहीं पूछा था । इतनी-सी बात जानने के लिए तुम्हें मेरे पास आना पड़ा ? इसलिए अकेले संगीत सीखना तुम्हारे लिए मुश्किल होगा ।"

---

१८३. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ २५५-५६

प्रश्नकर्ता ने कहा, "क्यों ? जब आप सीख सकते हैं, तो मैं क्यों नहीं सीख सकता ?"

घनश्यामदासजी ने उत्तर दिया, "यदि तुम इस योग्य होते तो इस तरह के प्रश्न ही क्यों करते ?"

इसलिए घनश्यामदासजी के अनुसार यदि समर्पण भाव है और आप उसके लिए वास्तव में तैयार हैं तो उस कार्य को हुआ ही समझना चाहिए। होने-न-होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

उनके हिसाब से होने-न-होने का संबंध सोच-विचार से ही है। उनका विश्वास था—चुने संकल्प की ओर डटकर श्रम करें। इसकी केवल दो ही संभावनाएं हैं—या तो आप सफल होंगे या असफल। परंतु श्रम इतना करें कि यदि आप सफल होते हैं तो पूर्ण सफल हों, यदि आप असफल होते हैं तो पूर्ण असफल हों।

जो सपनों को मूर्त रूप देना जानता है, उसे रंग सदा आकर्षित करते हैं। रंग की दुनिया में घनश्यामदासजी ने फोटोग्राफी के माध्यम से प्रवेश किया।

जो घटना, व्यक्ति, चित्र, दृश्य उन्हें स्मरणीय लगता, उसे वे फिल्म पर उतार लिया करते थे। फिल्में जब रंगीन होने लगीं तो फोटो और भी जीवंत होने लगे। रंगों की इस शक्ति को देखकर उन्होंने उनके माध्यम से भी स्वयं को अभिव्यक्त किया। फोटोग्राफर के साथ-साथ वे चित्रकार भी थे। उनके बनाये हुए चित्रों में से तीन उल्लेखनीय हैं—पहला चित्र है नाहरसिंह का, जो उनका कथानायक भी है। नाहरसिंह में उन्होंने अतीत के गौरव का रंग उभारा। दूसरा चित्र है 'सेल्फ पोट्रेट' जिसमें उन्होंने अपनी आत्मछवि में वर्तमान को देखा। तीसरा चित्र है प्रपौत्र कुमार मंगलम का, जिसमें भविष्य के प्रति आस्था का रंग है।

शब्द, स्वर और रंग के माध्यम से घनश्यामदासजी ने अपने जीवन में एक अनोखी लय की सृष्टि की। व्यवसाय और उद्योग के भौतिक संसार में रहने वाले घनश्यामदास-जी ने जीवन के दो रहस्य जान लिये थे। पहला—कठोर भौतिकता में निरंतर डूबे रहने से जीवन का कोमल पक्ष नष्ट होने लगता है। दूसरा मर्म, उन्होंने यह जाना कि संपत्ति अपने आपमें एक प्रकार की शक्ति है जो व्यक्ति को स्वयं का ही शत्रु बना देती है। इससे बचने के लिए जीवन के प्रति कलात्मक दृष्टि और सौंदर्य-बोध को जाग्रत रखना आवश्यक है। घनश्यामदासजी ने उद्योग-व्यवसाय, संपत्ति-शक्ति के साथ कलात्मक दृष्टि और सौंदर्य-बोध को उचित अनुपात में ऐसे मिलाया जिससे उस लय की सृष्टि हुई, जिसने उनके जीवन के स्वर-ताल को कभी बेसुरा नहीं होने दिया।

यह विशेषता शायद ही किसी उद्योगपति में हो सकती है। उद्योग अपने आपमें एक विशिष्ट विधा है, उसके साथ कला, संस्कृति और साहित्य का समन्वय आसान नहीं है। घनश्यामदासजी ने इसे सहज बनाकर दिखा दिया। उनमें स्वयं पढ़ने की आदत थी। गीता और रामचरितमानस उनके सबसे प्रिय ग्रंथ थे। दोनों ही लगभग उन्हें कंठस्थ रहे हैं। 'रामचरितमानस' का प्रवचन कराने की परंपरा उन्होंने ही डाली, ताकि उनके साथ सामान्य-जन भी ज्ञान प्राप्त कर सकें। उनका विश्वास रहा है कि बुद्धिमानों का समय 'काव्य-शास्त्र विनोद' के द्वारा बीतता है।

साहित्य और संस्कृति परंपरा उन्हें विरासत में मिली थी। उनके पिता बलदेव-दासजी अपना कुछ समय विद्वानों के सत्संग में व्यतीत करते थे। अपनी पैंतालीस वर्ष की अवस्था में ही वे काशी चले गये थे। वहां उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की थी। उनका प्रभाव घनश्यामदासजी पर पड़ा और उन्होंने हिंदी तथा संस्कृत में मर्मज्ञता प्राप्त की। वे फ्रांसीसी भाषा भी जानते थे। इन सबका प्रभाव उनकी रचनाओं में मिलता है। उनकी भाषा, शैली और लिखने के ढंग में अपनी विशिष्टता है। शब्दों के चयन में वे सजग रहे हैं। मानक शब्दावली क्या है, इसका ध्यान अपने लेखन में वे हमेशा रखते रहे हैं। प्रवाहमयी, प्रांजल्य और बोधगम्य शैली का ही कारण है कि उनके सभी ग्रंथ लोकप्रिय हुए हैं। यहां तक कि उनके संस्मरण, यात्रा वृत्तांत और डायरी की भी अपनी अलग शैली है। वे अपने साथ पाठकों को बहाकर ले चलते हैं।

घनश्यामदासजी ने योजनाबद्ध ढंग से भले न लिखा हो, लेकिन जब जो लिखा है, सुनियोजित रहा है। इसीलिए उनकी रचनाओं में क्रमबद्धता मिलती है। वे सार्थकता और यथार्थवाद चाहते रहे हैं, इसलिए उनकी प्रत्येक रचना अंत में कोई-न-कोई ज्ञान अथवा उपदेश जरूर छोड़ जाती है। मार्मिक संस्मरणों में भी उनकी दृष्टि कहीं पहुंचने की रही है। घनश्यामदासजी की तीक्ष्ण दृष्टि और हृदयग्राह्यता का ही कारण है कि वे आलोचक भी रहे हैं। उन्होंने जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' और अन्य अनेक ग्रंथ पढ़े थे। उनके संबंध में उनकी अपनी अलग आलोचक दृष्टि रही है। यह दृष्टि दूसरों से भिन्न है।

घनश्यामदासजी यदि उद्योग में पूरी तरह लिप्त न होते तो संभवतः विख्यात लेखक बनते। जवाहरलालजी के बारे में कहा जाता है कि वे राजनीति में न जाते तो बहुत बड़े लेखक होते। यही बात दूसरे ढंग से घनश्यामदासजी पर भी कही जा सकती है। लेखक होने के साथ-साथ एक सुधी पाठक भी होने के कारण उनमें आलोच्य दृष्टि उभरी। संगीत-प्रेमी होने के कारण रंगमंच से भी वे जुड़े। थियेटर यदा-कदा जाना

उनका शौक था। वे अंग्रेजी नाटक अधिक देखा करते थे।

कला के साथ-साथ घुड़सवारी और पिस्तौलबाजी में भी वे दक्ष थे। इतने सारे गुण एक साथ, एक व्यक्ति में कदाचित ही देखने को मिलते हैं। यही कारण है कि घनश्यामदासजी अपने क्षेत्र के बाहर भी लोकप्रिय हुए।

साहित्य, संस्कृति, कला और देश-विदेश भ्रमण करने के गुणों ने उन्हें पत्रकारिता की ओर भी प्रेरित किया। कलकत्ता से उन्होंने 'बंगाली' और 'न्यू एम्पायर' नाम के दो समाचार-पत्र निकाले थे। सन उन्नीस सौ बीस में ये पत्र निकले। तब कलकत्ता पत्रकारिता का केंद्र था। एक वर्ष बाद उनकी प्रेरणा से 'अग्रसर' नाम से एक साप्ताहिक पत्र निकाला गया। यह सर्वविदित है कि गांधीजी के पत्र 'हरिजन' में वे नियमित लिखते भी रहे हैं। इसीलिए उन्होंने सोचा कि राष्ट्रीय जागरण के लिए समाचार-पत्रों का होना नितांत आवश्यक है। उन्होंने इलाहाबाद से अंग्रेजी में 'लीडर' और हिंदी में 'भारत' दैनिक पत्र निकालने की प्रेरणा दी। इलाहाबाद में ही 'भारती भंडार' प्रकाशन संस्थान बनाया, जिससे उच्चस्तरीय पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। 'सस्ता साहित्य मंडल' में भी उन्हीं की प्रेरणा का प्रतिरूप है।

घनश्यामदासजी की पत्रकारिता के क्षेत्र में सबसे बड़ी देन है 'हिंदुस्तान टाइम्स'। सन उन्नीस सौ सत्ताईस में इस अंग्रेजी दैनिक पत्र का दिल्ली से प्रकाशन आरंभ हुआ। इसके पीछे उनके मन में बहुत बड़ी भावना थी--देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जगाना और उन्हें देश-प्रेम की ओर अग्रसर करना। अब यही संस्थान हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन समूह के नाम से जाना जाता है और अब यहां से कई पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन समूह का विशिष्ट स्थान है और इसे जन्म देने का श्रेय घनश्यामदास बिड़ला जैसे पारखी और दिव्य-द्रष्टा को ही है।

थे । इतने सारे
ही कारण है कि

उन्हें पत्रकारिता
म्पायर' नाम के
। तब कलकत्ता
एक साप्ताहिक
में वे नियमित
लिए समाचार-
में 'लीडर' और
'भारती भंडार'
हुआ । 'सस्ता

तान टाइम्स' ।
आरंभ हुआ ।
ाष्ट्रीय चेतना
ान हिंदुस्तान
पत्र-पत्रिकाएं
ह का विशिष्ट
और दिव्य-

चतुर्थ पर्व

उत्तरयोग

चरैवेति चरैवेति
सम पर संगीत
दृष्टि और विचार
चारित्रिक विशेषताएं

चरैवेति चरैवेति

अब तक की जीवन-यात्रा देखकर ऐसा लगता है कि घनश्यामदासजी की तीन जन्म-भूमियां हैं। उनकी पहली जन्म-भूमि है, पिलानी की धरती। इसका संबंध उनकी किशोरावस्था से लेकर युवावस्था तक है। दूसरी जन्म-भूमि है, उनका कर्म-जगत, जिसे आज स्मृति-जगत भी कह सकते हैं। इसका संबंध उनकी प्रौढ़ावस्था से है। उनकी तृतीय जन्म-भूमि है, आत्मलोक, जहां जन्म लेते ही उनके जीवन का 'उत्तरयोग' आरंभ हो जाता है। घनश्यामदासजी का उत्तरयोग, उनके आत्मलोक का वह मानव-चित्त है, जिसे महादेश और लोकोत्तर सृष्टि का जगत कहा जा सकता है। यही चित्त-लोक समस्त मानवता के साथ उनके आंतरिक योग का वह क्षेत्र है जो किसी भी संकीर्ण दायरे में आबद्ध नहीं है। यह घनश्यामदासजी का ऐसा व्यापक चित्त है जो व्यक्तिगत होते हुए भी विश्वगत है। इसका परिचय अकस्मात उस दिन मिल जाता है, जब सन उन्नीस सौ इकहत्तर के सितंबर में घनश्यामदासजी केदारनाथ की तीर्थ-यात्रा पर चल पड़े।

इस यात्रा की तैयारी के समय प्रश्न उठा——केदारनाथ की यात्रा ? इस उम्र में ? सभी जानते थे कि उस यात्रा में "एक तो तेरह मील पैदल चलना पड़ता है, दूसरे, साढ़े बारह हजार फुट की ऊंचाई लांघनी होती है१८४।" लेकिन घनश्यामदासजी के मन को यही 'पैदल चलना', यही 'साढ़े बारह हजार फुट की ऊंचाई' ही तो बार-बार बुला रही थी। इतने वर्षों तक चलते ही रहे हैं वे——देश-विदेश में उद्योग की नयी-नयी संस्थाएं निर्मित करते हुए। अपने देश में गांधीजी की छत्र-छाया में स्वराज्य के पथ पर, मंजिल-दर-मंजिल, अपनी उपलब्धियों के रास्ते पर। लेकिन अभी तक

१८४. बिखरे विचारों की भरावटी, पृष्ठ २५८

ऐसी कोई यात्रा नहीं की, जो ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती है, त्यों-त्यों मन के उद्वेग को शांत करती चलती है। यह था––घनश्यामदासजी का मानस, तीर्थ-यात्रा पर चलने से पहले।

सारे तीर्थों को छोड़कर यात्रा क्यों शुरू की केदारनाथ से ? घनश्यामदासजी के जीवन को अभी तक देखकर जिस देवता का सहज संबंध उनके स्वभाव से जुड़ता है, वे हैं केदारनाथ––शंकर, शिव। इसी तरह महापुरुषों में भी महात्मा गांधी के अतिरिक्त जिस महापुरुष ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया, वे हैं आदि शंकराचार्य। शंकराचार्य की चर्चा, वे प्रायः अपने बंधुजन और साथियों से किया करते थे। वे अक्सर कहा करते थे––देखो, इस महापुरुष का जीवन, जिसने बत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही अनेक बड़े-बड़े ग्रंथ रच डाले और सारे भारत में भ्रमण कर विरोधियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। भारत के चारों कोनों में चार प्रधान मठ स्थापित किये और सारे देश में युगांतर उपस्थित कर दिया। शंकराचार्य ने डूबते हुए सनातन धर्म की रक्षा की।

घनश्यामदासजी अपने परिवार-जनों से शंकराचार्य के जीवन की यह घटना जरूर बताते थे––एक बालक था, जिसका नाम था शंकर। एक वर्ष की अवस्था होते-होते वह मातृभाषा में अपने भाव प्रकट करने लगा। दो वर्ष की अवस्था में पुराण आदि की कथा सुनकर कंठस्थ करने लगा। पांचवें वर्ष में यज्ञोपवीत कर उसे गुरु-गृह भेजा गया। सात वर्ष की अवस्था में ही वह वेद और वेदांगों का पूर्ण अध्ययन करके घर आ गया। विद्याध्ययन समाप्त कर शंकर ने संन्यास लेने की इच्छा प्रकट की। परंतु माता ने आज्ञा न दी। शंकर माता के बड़े भक्त थे। उन्हें कष्ट देकर संन्यास नहीं लेना चाहते थे। एक दिन माता के साथ नदी-स्नान करते समय एक मगरमच्छ ने उन्हें पकड़ लिया। माता बेचैन होकर हाहाकार करने लगी। इस पर शंकर ने कहा, 'यदि आप संन्यास लेने की आज्ञा दे दें तो मगरमच्छ मुझे छोड़ देगा।' माता ने तुरंत आज्ञा दे दी और मगरमच्छ ने शंकर को छोड़ दिया।

घनश्यामदासजी ने कई बार पुत्रवधू सरला और पुत्र वसंतकुमार और सहयोगी दुर्गाप्रसाद मंडेलिया को बताया था कि कैसे शंकराचार्य ने दक्षिण में तुंगभद्रा के तट पर मंदिर बनवाकर उसमें कश्मीर वाली शारदा देवी की स्थापना की। कैसे श्रृंगेरीमठ से जगन्नाथपुरी जाकर गोवर्धनमठ की स्थापना की। कैसे गुजरात आकर द्वारकापुरी में शारदापीठ की स्थापना की। फिर प्रचार-कार्य करते हुए कैसे असम के कामरूप में गये और तांत्रिकों से शास्त्रार्थ किया। वहां से बदरिकाश्रम जाकर वहां ज्योतिर्मठ

की स्थापना की। वहां से अंत में केदार क्षेत्र आये, जहां पर कुछ दिनों बाद भारत का प्रोज्ज्वल सूर्य ब्रह्मलीन हो गया ।

केदारनाथ की यात्रा से घनश्यामदासजी ने अपनी तीर्थयात्रा इसलिए शुरू की क्योंकि केदारनाथ पीठ शंकराचार्य की श्रेष्ठतम उपलब्धि थी । घनश्यामदासजी शंकराचार्य पर बहुत श्रद्धा रखते थे ।

केदारनाथ शंकर का वह मंगलमय रूप है जो अपनी उच्चता पर अवस्थित संसार को शिव-दृष्टि से देख रहा है । इस ओर घनश्यामदासजी का आकृष्ट होना स्वाभाविक था ।

तीसरी बात सतहत्तर वर्ष की अवस्था में इस दुर्गम यात्रा पर जाने की क्यों सोची घनश्यामदासजी ने ? जीवन को उन्होंने चुनौती के रूप में स्वीकार किया था । आजन्म हर तरह की चुनौतियां स्वीकार करते और सफल होते आये थे वे। हिमालय की ऊंचाई पर अवस्थित केदारनाथ के मंदिर ने भी उन्हें एक चुनौती दी । उसे कैसे न स्वीकार करते घनश्यामदासजी ?

तीर्थ-यात्रा शुरू करने से पहले घनश्यामदासजी ने शारीरिक ही नहीं, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से भी उसकी पूरी तैयारी की । उन्होंने 'तीर्थ', 'तीर्थ का पात्र' और 'तीर्थ-फल' इन तीनों के बारे में संस्कृत-ग्रंथ पढ़े । विद्वानों से विचार-विमर्श किया, जिनमें स्वामी चिन्मयानंद और स्वामी अखंडानंद प्रमुख थे। 'तीर्थ का पात्र' के प्रसंग में स्वामी अखंडानंद ने बताया--जिसके हाथ, पैर और मन भली-भांति संयमित हैं··· जो अनुकूल अथवा प्रतिकूल जो कुछ भी मिल जाये, उसी में संतुष्ट रहता है, जिसमें अहंकार का सर्वथा अभाव रहता है, वह तीर्थ-यात्रा का पात्र है ।

इस प्रसंग में धर्मग्रंथों के स्वाध्ययन से घनश्यामदासजी को पता चला कि तीर्थ का फल उसे ही मिलता है जो पाखंड नहीं करता । बहुत थोड़ा आहार करता है। इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर चुका है । सब प्रकार की आसक्तियों से रहित है । जिसकी बुद्धि निर्मल है । जो सत्य बोलता है। व्रत-पालन में दृढ़ है । सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान अनुभव करता है और जो तीर्थ-यात्रा के बाद नये काम आरंभ नहीं करता । इस संदर्भ में अपने व्यक्तित्व को देखकर घनश्यामदासजी ने पाया कि वे सब प्रकार से तीर्थ के फल को प्राप्त करने के पात्र हैं। बस, एक ही संकल्प लेना है उन्हें, अब नये काम का आरंभ नहीं करना है । इस संकल्प को घनश्यामदासजी ने निभाया । अपने पुत्र-पौत्रों को नये काम की प्रेरणा दी, निर्देश दिये, लेकिन स्वयं किसी नये काम में हाथ नहीं डाला ।

कार्तिकी अमावस्था के दिन, पुत्रवधू सरलाजी और पुत्र बसंतकुमारजी के साथ सन उन्नीस सौ इकहत्तर में घनश्यामदासजी केदारनाथ की यात्रा पर निकल पड़े।

गौरी-कुंड तक की यात्रा मोटरगाड़ी से तय की गयी। इसके आगे अब पैदल ही चलना था। सबकी राय हुई कि 'बाबू' को आगे की यात्रा डांडी पर करनी चाहिए। लेकिन वे किसी तरह भी राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा, धर्म-विधान यह कहता है कि बिना गांठ का डंडा हाथ में लेकर चलो। एक ओर पुत्र और दूसरी ओर पुत्रवधू को देखकर 'बाबू' को सहज ही अनुभूति हुई कि ये हैं बिना गांठ (कुंठा) की लाठियां। उन्हें तब प्रत्यक्ष प्रतीति हो गयी कि पितृसेवा से पुनीत, ये दोनों, उनके दोनों हाथों की बिना गांठ की दो पुष्ट लाठियां हैं। ऐसे क्षण उनके हृदय में भजन की यह पंक्ति साकार हो उठी--"जो मातु पिता की सेवा किये, वह तीरथ-व्रत किये-न-किये।"

पंद्रह किलोमीटर की दूरी, साथ ही पचपन सौ फुट की ऊंचाई घनश्यामदासजी ने इस मंत्र का जाप करते हुए पार की :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण भक्तवत्सल गोपते।
शरण्य भगवन विष्णो मां पाहिबहुसंसृते॥

मंत्र-जाप करते हुए संकल्प-भाव से चलते रहे घनश्यामदासजी! रास्ते में जो भी अभिवादन करता, प्रसन्नमुख उसे उत्तर देते।

दूर से मंदिर दीख पड़ा। वास्तु-शिल्प की दृष्टि से साधारण, लेकिन अपने एकाकी अस्तित्व और अपनी ऊंचाई के कारण भव्य गरिमामय। घनश्यामदासजी के मन में स्वतः ही भक्ति का संचार हुआ। उन्हें लगा, यहां आकर जो अनुभूति हुई है, उसे दोहराने के लिए एक बार और आना पड़ेगा। संभवतः पिता ने अपना संकल्प पुत्र बसंतकुमारजी को बताया होगा। अपने संकल्पवान पिता के संकल्प की दृढ़ता से बसंतकुमारजी भली-भांति परिचित थे। तभी उन्होंने केदारनाथ के पथ पर, रामबाड़ा में, एक अतिथि-निवास बनवाने का निश्चय कर लिया।

केदारनाथ-मंदिर-द्वार पर खड़े होते ही घनश्यामदासजी को खजुराहो का प्रसिद्ध कंदर्प महादेव मंदिर का स्मरण हो आया, जिससे प्रेरणा लेकर उन्होंने पिलानी का शारदापीठ बनवाया था। केदारनाथ के मंदिर में उन्हें 'कंदर्प' का वास्तविक अर्थ दीख पड़ा। ऐसे महादेव, जो इतनी ऊंचाई पर, गुफा में अवस्थित हैं। तभी वे कंदर्प हैं, जिन्होंने कामज्वर, आवेश, प्रबल इच्छा का दहन किया है।

केदारनाथ के मंदिर के द्वार पर खड़े होकर घनश्यामदासजी को अनुभूत हुआ कि हिंदू मंदिर ब्रह्मांड का प्रतिरूप है, इसलिए वह मनुष्य भी अपने आपमें एक 'पवित्र मंदिर' भी है। उसका शरीर 'ब्रह्मपुर' है। शरीर, मंदिर और ब्रह्मांड एक-दूसरे के समान हैं। इसी कारण जो भी पूजा दृश्य-रूप से की जाती है, वह भीतर-ही-भीतर अदृश्य-रूप से भी की जाती है। स्थूल कर्म-कांड ध्यान पूजा के लिए एक दृश्य आधार है, जिसका उद्देश्य है उस परम का ज्ञान, जो प्रथम है, जो स्वामी है।

इस आध्यात्मिक अनुभूति ने तीर्थफल के पात्र घनश्यामदासजी में एक गहरा आनंद भर दिया। "जब मैं केदारजी की यात्रा सफलतापूर्वक करके लौट आया, तब एक नयी हिम्मत आ गयी और गंगोत्तरी की यात्रा करने की भी एक उमंग पैदा हुई।"१८५ पर वे गंगोत्री की यात्रा से पहले सन उन्नीस सौ इकहत्तर की शरद ऋतु में बद्रीनाथ की यात्रा करके आये और अक्तूबर सन उन्नीस सौ बहत्तर में गंगोत्री की यात्रा करने गये।

केदारनाथ की यात्रा के मुकाबले गंगोत्री की यात्रा सरल मानी जाती है। इस पूरी यात्रा के अनुपम दृश्यों और यात्रियों की गहरी श्रद्धा देखकर घनश्यामदासजी के हृदय पर उसकी अमिट छाप पड़ी। इसी का प्रभाव है कि उन्होंने इस यात्रा के बारे में 'गंगोत्तरी' नामक संस्मरणात्मक लेख लिखा। यात्रा पर जाने से पहले उनका मन 'गंगोत्री' या 'गंगोत्तरी' के सही नाम पर वाद-विवाद करने लगा। इस प्रसंग में फिर उन्होंने अध्ययन किया और वे इस नतीजे पर पहुंचे कि सही नाम 'गंगोत्तरी' है—गंगा-उत्तरी अर्थात उत्तरीय गंगा। सही नाम ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वे उत्तराखंड के इतिहास में चले गये—गुप्तकाशी, उत्तरकाशी के नामकरण के विषय में भी वे एक विशेष नतीजे पर पहुंचे। इसी तरह रुद्रप्रयाग, विष्णुप्रयाग, देवप्रयाग इत्यादि के नामों के पीछे भी जो विशेष आशय हैं, उन्हें घनश्यामदासजी ने ढूंढ़ निकाला, "जहां-जहां नदियों का संगम हुआ है, पूर्वजों ने उस स्थान का नाम प्रयाग रख दिया, ऐसा बोध होता है।"१८६

गंगोत्तरी की यात्रा में घनश्यामदासजी का मन 'यज्ञ' भाव पर सदा घूमता रहा। गीता में भगवान ने यज्ञों के बारे में जो कुछ कहा है, उसके बारे में वे चुपचाप सोचते रहे। 'यज्ञ' का अर्थ श्रीकृष्ण भगवान ने जान-बूझकर क्यों इतना व्यापक और विस्तृत कर दिया है, इसका मर्म उन्होंने इस तीर्थयात्रा-पथ पर प्राप्त किया। उनका आशय था कि लोग समझ लें कि घी और अन्य सामग्रियों को अग्नि में होमने मात्र का

१८५. बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ २५८
१८६. वही

नाम यज्ञ नहीं है। असल में तो जो कार्य अनासक्त भाव से 'सर्वभूतहिते रताः', अर्थात परार्थ किया जाता है, वह सब यज्ञ है।

"सूर्य अनासक्त भाव से हमें तेज देता है, वायु अनासक्त भाव से हमें प्राण देती है, नदियां भी अनासक्त भाव से हमारी भिन्न क्षेत्रों में सेवा करती हैं, वृक्ष फल देकर, छाया देकर, ईंधन और आक्सीजन देकर प्राणिमात्र की सेवा करते हैं--ये सभी कार्य यज्ञ की व्याख्या में आ जाते हैं। इस अर्थ में सूर्य, वायु, नदियां और वृक्ष सब निरंतर यज्ञ करते हैं।"[१८७]

इस यात्रा में उनका चित्त जैसे विचारों के रथ पर आरूढ़ था। इसके पीछे थी उनकी इतिहास-कल्पना और पूर्वजों की बुद्धि एवं उनकी कल्पना के प्रति आदरभाव। इस छानबीन में हमें कोई कुंजी मिल जाये तो आत्मसंतोष तो होगा ही और उस कुंजी से धर्म के उन तथ्यों का रहस्य खुल जायेगा, जिनके ऊपर न जाने कितने अंधविश्वास के सामाजिक परदे पड़े हुए हैं।

गंगाजी का उद्गम हिममंडित गोमुख तीर्थ से हुआ है, किंतु गंगोत्तरी धाम उससे अठारह मील नीचे है। गंगोत्तरी में स्नान के पश्चात गंगाजी का पूजन करके, गंगाजल लेकर यात्री नीचे उतरते हैं। यह स्थान समुद्रतल से दस हजार बीस फुट की ऊंचाई पर गंगा के दक्षिण तट पर है। आसपास देवदार तथा चीड़ के वन हैं। यहां मुख्य मंदिर गंगाजी का ही है।

सामान्य तीर्थयात्री अपनी सीमाओं में बंधा उस मनोरम स्थल पर आकर भी अपनी दृष्टि अपने ही पाप-पुण्य के लेखे-जोखे में उलझाये रखता है। गंगोत्तरी का स्नान और गंगामाई के दर्शन कर पाप-मुक्ति की एकमात्र चिंता में बौखलाया रहता है। अपने भीतर हो रहे यज्ञ और अंतर में बहने वाली निर्मल गंगा की ओर भी उसकी दृष्टि नहीं जाती है।

घनश्यामदासजी अपने अंतर में होने वाले यज्ञ में अपने दैनिक कर्मों की आहुति देते रहते थे। इस अर्थ में वे दैनिक यज्ञ करने वाले अग्निहोत्री थे। अंतस की गंगा में नित्य स्नान कर प्रति क्षण अपने को निर्मल रखने वाले घनश्यामदासजी जीवनपर्यंत प्रतिदिन प्रातः-सायं अपने अहंकार का हवन करने वाले थे। इसलिए गंगोत्तरी में उनकी दृष्टि स्वयं से ऊपर उठकर व्यापक हो गयी। उस पवित्र स्थान पर, विस्तृत खुले आकाश के नीचे, धवल हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों के बीच निर्मल जल की निर्बंध

१८७. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ २५१

धारा में उन्हें जैसे जीवात्मा से ऊपर सर्वात्मा के दर्शन हुए। "एक वृद्धा को हमने देखा जो दमे से पीड़ित थी, पर लाठी के बल गिरती-पड़ती गंगामाई का दर्शन तो कर ही आयी। ··· एक ग्लेशियर-तुषारनंद है, जिसमें से पानी का स्रोत निकलता है। चूंकि वह हिमाच्छादित और बिलकुल धवल है, इसलिए गाय के मुख-जैसा दीखता है, इसलिए इस तुषारनंद को गोमुख की उपमा मिल गयी। ··· पूर्वजों का जीवन काव्य-मय था और जब वे सौंदर्यमुग्ध होकर भावना में समाधिस्थ होते थे, तब उनकी कल्पना वेग से उत्तेजित हो जाती है।"[१८८] इस तरह गंगोत्तरी में गंगा के सम्यक् दर्शन करने के लिए जिस दिव्य चक्षु की आवश्यकता है, जो दर्शन भौतिक चक्षुओं की सीमा के बाहर है और वर्णनातीत भी है, केवल बुद्धिगम्य है, उसे घनश्यामदासजी ने जन्म और प्रलय, चरैवेति और चरैवेति के परिप्रेक्ष्य में देखा।

गंगोत्तरी से लौटने के कुछ ही दिनों बाद इक्कीस अप्रैल उन्नीस सौ तिहत्तर को भाई रामेश्वरदासजी का देहावसान हो गया। भाई रामेश्वरदास को हवन-तर्पण आदि में बहुत विश्वास था। घनश्यामदासजी ने संकल्प कर लिया, जमुनोत्री जाकर रामेश्वर भाई का तर्पण अवश्य करेंगे।

पर इस बीच कई बार विदेश की यात्राओं पर जाने के कारण, जमुनोत्री तीर्थ-यात्रा में विलंब होता रहा। अंततः सन उन्नीस सौ चौहत्तर में गांधी जयंती के दिन घनश्यामदासजी, सरलाजी, बसंतकुमारजी और दुर्गाप्रसादजी मंडेलिया के साथ जमुनोत्री यात्रा पर निकले। पिछली तीन यात्राओं की तरह उत्तराखंड की इस चौथी तीर्थ-यात्रा में भी घनश्यामदासजी ने डांडी पर बैठने से इंकार कर दिया और पैदल ही दुर्गम रास्ते पर चले। किशोर पारीख द्वारा लिये गये इस यात्रा के अनेक फोटोग्राफ उपलब्ध हैं। वे यात्रा की कठिनाई और घनश्यामदासजी के संकल्पवान व्यक्तित्व को सूक्ष्मता से चित्रित करते हैं। एक चित्र उस समय का है, जब एक खतरनाक मोड़ पर गिरे हुए चट्टानों से घिरे पथ को घनश्यामदासजी पार कर रहे हैं। पैर उठाने से पहले वह नीचे चट्टान को देख रहे हैं, मानो जानना चाहते हैं कि किस जगह पैर रखने पर वह फिसलेगा नहीं। यह एक संकल्पनिष्ठ व्यक्ति की मजबूती का प्रमाण है।

इस कठिन दुर्गम यात्रा पर घनश्यामदासजी की वेशभूषा बिलकुल चुस्त-दुरुस्त है। पतलून की क्रीज तक सही है। व्यवस्था में कहीं कोई त्रुटि नहीं है।

इस पूरी यात्रा में घनश्यामदासजी यमुना की महिमा को स्मरण करते रहे।

---

१८८. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ २६०-२६१

उन्होंने गंगा, यमुना, सरयू, नर्मदा आदि नदियों के बारे में बहुत कुछ पढ़ रखा था। वे सारी बातें उन्हें इस समय याद आ रही थीं। वे अपने आपमें मगन सोच रहे थे कि यमुना की महिमा इसलिए है कि वह श्रीकृष्ण भगवान की लीला-क्षेत्र बन गयी थी। उन्हें यह भी याद आ रहा था कि शास्त्रों और पुराणों के अनुसार यमुना तट पर कई महान यज्ञ हुए हैं। ध्रुव ने यमुना के तट पर मधुवन में जाकर तप किया और ईश्वर का साक्षात्कार किया। मनु ने भी पुत्र-कामना से यमुना के तट पर तप करके, दस पुत्रों की प्राप्ति की। अंबरीष ने यमुना-तट पर तप और व्रतों की साधना करके भगवान की कृपा पायी।

निर्जन वन प्रांतर को पार करते हुए जयदेव का यह भजन--'धीर-समीरे, यमुना तीरे, वसति बने वनमाली', उनके होंठों पर आता रहा। रास्ते पर चलते-चलते कभी यमुना दीखतीं, कभी लुप्त हो जातीं। कल-कल करती हुई जब भी दीखतीं, घनश्यामदासजी को सहज ही स्मरण हो आता--'भरन जो गयी जल, जमुनातट, पनघट नट नागर को प्रगट दरस भयो।' इस तरह उस यात्रा में यमुना के साथ नट नागर श्रीकृष्ण की याद उन्हें हर क्षण आती रही। उन्हें यह भी याद आया कि वंशीवट भी यमुना के तट पर ही था। यमुना और श्रीकृष्ण के इस घनिष्ठ संबंध की घटनाओं से सारा भागवत पुराण भरा पड़ा है, इसी भागवत की उन्हें बार-बार याद आयी।

हिमालय के विषय में जो कुछ भी संस्कृत साहित्य में पढ़ा था--विशेषकर कालिदास के 'मेघदूत' में, अलका नाम की नगरी, कैलाश पर्वत, शिवजी, आषाढ़ का मेघ, वह सब उस यात्रा में घनश्यामदासजी को साकार होता चला गया। उनके शब्दों में, "ऐसे रूप को कोई भौतिक चक्षुओं से क्या देखे और क्या भौतिक वाणी से उसका वर्णन करे।"

इसी पथ पर चलते हुए उन्हें अनुभव हुआ, "हमारी इंद्रियां, मन और बुद्धि सभी की शक्ति अत्यंत परिमित है। हमारी आंखों की दृष्टि एक विस्तार के बाद निरर्थक हो जाती है। कानों और अन्य इंद्रियों की शक्ति का भी यही हाल है। इसी तरह हमारी बुद्धि की भी सीमा है। अपने अज्ञान और अहंकार के कारण इस सीमा को स्वीकार करने में हम हठधर्मी करते हैं और एक सर्वविद की ओढ़नी ओढ़कर, प्रश्नोत्तर और वाद-विवाद में फंस जाते हैं।"[१८९] इसी प्रसंग में उन्हें महात्मा गांधी की याद आयी। जब एक बार पूर्व-जन्म के सिद्धांत की चर्चा करते हुए घनश्यामदासजी ने गांधीजी से प्रश्न किया था, "पूर्व जन्म की कल्पना क्या सही है?"

१८९. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ २७८

बाप ने उत्तर दिया था, "इस विवाद में न पड़ो, जो कर्त्तव्य-कर्म है उसे करो, बाकी पचड़े छोड़ो।"

अस्सी साल के वृद्ध घनश्यामदासजी का जमुनोत्री के इन दुर्गम मार्गों पर बढ़ते जाना नितांत हृदयग्राही दृश्य था। दर्शकों का समूह जिसने तीर्थ-यात्री के रूप में घनश्यामदासजी को इस तरह चलते देखा, उसके लिए भी यह दृश्य प्रेरणादायी था। बाद में इस यात्रा की फिल्म जिन लोगों ने देखी, वे भी अत्यंत प्रभावित हुए।

जमुनोत्री पहुंचते ही घनश्यामदासजी स्नान करने गये। यमुना के बर्फ जैसे ठंडे जल में उन्होंने सहज ही गोता लगाया, फिर विधिपूर्वक रामेश्वर भाई का तर्पण किया।

गंगा और यमुना के उद्गम को देखकर घनश्यामदासजी की लेखनी फिर चल पड़ी। उन्होंने इन दो नदियों और इनके उद्गम तीर्थों पर पांडित्यपूर्ण लेख लिखे, जो पहले 'हिंदुस्तान' में छपे और फिर लघु पुस्तिका-रूप में।

अपने जीवनकाल में घनश्यामदासजी ने अनेक यात्राएं और तीर्थ-यात्राएं कीं। पर गंगोत्तरी और जमुनोत्री की तीर्थ-यात्राओं का उनके जीवन में बहुत महत्त्व है। ऐसा लगता है जैसे गंगा और यमुना उनके लिए आध्यात्मिक स्तर पर सह-यात्री थीं। तीनों ने अपने जीवनकाल में हजारों मील की यात्रा की है, और कभी मुड़कर नहीं देखा है। इस यात्रा में उन्होंने हृदय विशाल रखा, कभी कृपणता नहीं की। सारी यात्रा में तटवर्ती वृक्षों को पोषण मिला। नगर और ग्राम सबकी पिपासा बुझायी। सबको दिया, सबका उपकार किया, किसी से कभी कुछ मांगा नहीं।

बंबई, तेईस अक्तूबर उन्नीस सौ पचहत्तर की शाम, घनश्यामदासजी ने अपने सचिव श्यामलाल पारीक से कहा, "स्वामी अखंडानंदजी से बात कराओ।"

फोन पर घनश्यामदासजी ने बिना किसी भूमिका के सीधे कहा, "स्वामीजी, हिंदी में पुरुषार्थ का प्रचलित अर्थ है 'परिश्रम', किंतु हमारे दार्शनिक, आध्यात्मिक और धार्मिक ग्रंथों में 'इच्छाओं के विषय' को पुरुषार्थ कहा गया है। आपकी क्या राय है ?"

स्वामीजी ने कहा, "नारायण, हर एक की कामना होती है कि उसे सुख प्राप्त हो। इसके चार रूप हैं। ये चारों पुरुषार्थ—अर्थ, काम, धर्म व मोक्ष हैं।"

घनश्यामदासजी बोले, "जी हां, महाराज, इस सुख की प्रेरणा से प्रेरित जीवन की चार स्थितियां भी हैं—संग्रह, भोग, नियंत्रण और त्याग।"

स्वामीजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "आप स्वयं ज्ञानी हैं, संग्रह, सुख-दुख के मर्म को समझते हैं।"

घनश्यामदासजी ने स्वामीजी को प्रणाम कर फोन रख दिया। मालाबार हिल पर स्थित इल्प्लाजो फ्लैट से समुद्र की ओर देखते हुए वे अपने आपमें निमग्न हो गये। कमरे में घूमते हुए वे जैसे देखने लगे—कुछ लोग अपने पास धन का संग्रह हो जाने पर ही अपने को सुखी मान लेते हैं। कुछ लोग धनार्जन तो खूब करते हैं, किंतु उसके साथ उनकी यह भावना भी रहती है कि वे किसी का हक छीनकर धन का संग्रह न करें और इस संग्रहीत धन का भोग भी संयम के साथ करें। उनके मुख पर जैसे कुछ बरस गया। उन्होंने अपने आपसे कहा, 'भोग की पराधीनता से बचाने के लिए ही 'धर्म' पुरुषार्थ है। इंद्रियों में मन-हृदय बंधना नहीं चाहिए। बंधना ही पराधीनता है। तो मोक्ष क्या है?'

वे अपलक समुद्र की ओर निहारने लगे—विषयों से अपने को असंग करके रखना ही 'मोक्ष' पुरुषार्थ है।

ग्रह, सुख-दुख के

लाबार हिल पर
निमग्न हो गये ।
संग्रह हो जाने
हैं, किंतु उसके
धन का संग्रह
के मुख पर जैसे
बचाने के लिए
ही पराधीनता

असंग करके

सम पर संगीत

सन उन्नीस सौ छिहत्तर के मध्य में घनश्यामदासजी इंग्लैंड होते हुए न्यूयार्क पहुंचे। इस बार न्यूयार्क में सिर्फ दो दिन रहकर अचानक भारतवर्ष वापस आने लगे। न्यूयार्क में एक अमेरिकी मित्र से बोले, "तुम्हारे देश में संगीत नहीं है, केवल 'गाते जाना' ही है। यही हाल तुम्हारे उद्योग-जगत का है।"

उस उद्योगपति को घनश्यामदासजी की यह बात समझ में नहीं आयी।

उसे समझाते हुए घनश्यामदासजी बोले, "अमेरिका ही नहीं, पूरे पश्चिमी महादेश में हम देखते हैं कि मनुष्य का चित्त मुख्य रूप से बाहर की ओर दौड़ता रहता है। जीवन-व्यापार का कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, इस दौड़ का कहीं अंत नहीं है। पश्चिम का संगीत इसी चित्त का परिणाम है। कहीं समाप्ति नहीं, अंत नहीं। बस, गायन की वही क्रिया · · · क्रिया!"

अमेरिकी मित्र मान गये कि "हां, हम गायन-क्रिया को ही मुख्य रूप से देखते हैं। संपूर्ण गान को एक-साथ कभी नहीं देखते।"

"क्यों ?"

अमेरिकी उद्योगपति अपने दोनों कंधे उचकाकर घनश्यामदासजी का मुंह देखने लगे।

घनश्यामदासजी बोले, "देखो, इस तरह केवल 'चलते जाने' और 'करते जाने' की दिशा में चित्त का झुकाव होने से हम पाश्चात्य जगत में शक्ति की उन्मत्तता देखते हैं। यहां के लोगों ने यह ठान लिया है कि किसी चीज को हाथ से जाने नहीं देंगे, सर्वदा 'करते रहेंगे', कहीं रुकेंगे नहीं। समाप्ति का सौंदर्य वे नहीं देखते। हमारे भारत

देश में इसका ठीक उल्टा है। हमारा संगीत गायक के अंतःकरण में है। संगीत में एक ओर व्याप्ति है, दूसरी ओर समाप्ति है। एक ओर आदि है, दूसरी ओर अंत है। एक ओर भाव है, दूसरी ओर अभिव्यक्ति है। संगीत का आदि आलाप है, समाप्ति 'सम' है।''

जिस दिन घनश्यामदासजी ने अपने जीवन के अस्सी वर्ष पूरे किये, उसी 'सम' से उन्होंने अपने जीवन-संगीत को सम पर ले आने का यत्न प्रारंभ किया।

बंबई की बात है, उसी इल्प्लाजो, चार-ए फ्लैट की। तब घनश्यामदासजी वहीं रहते थे। रविवार का प्रातःकाल। नित्य प्रति की तरह पहला टेलीफोन कलकत्ता, पुत्रवधू सरला को। दूसरा, ग्वालियर, दुर्गाप्रसाद मंडेलिया को।

प्रसन्न और आश्वस्त भाव से निश्चिंत सोफे पर बैठकर सामने दीवार पर प्रपौत्र कुमारमंगलम का वह चित्र देखने लगे, जिसे उन्होंने कुछ दिनों पहले स्वयं बनाया था। उनके अंतःकरण में चित्र को देखते हुए जैसे कोई संगीत उठने लगा।

घनश्यामदासजी जीवन के स्वर-ताल के नियमों में अविचलित रूप से बंधे थे, इसीलिए संगीत के बीच वे उन्मुक्त होते थे। उनके भीतर में सुनायी दे रहा था कि हमारी जीवन-वीणा में कर्म के सभी छोटे-मोटे तार तब तक बंधन लगते हैं, जब तक कि उन्हें सत्य के नियम में कसकर बांधा नहीं जाता। लेकिन इन तारों को ढीला खोल डालने से जो शून्यता और व्यर्थता पैदा होती है, उससे हम निष्क्रिय हो सकते हैं, मुक्त नहीं।

तभी घनश्यामदासजी अस्सी वर्ष की उम्र के बाद भी अपनी जीवन-चर्या से यह उदाहरण देते रहे कि किसी भी अवस्था में कर्म का त्याग करना नहीं, बल्कि दैनंदिन कर्मों को एक चिरस्थायी स्वर में बांधना ही सत्य-धर्म की साधना है।

रामेश्वरदासजी के देहांत के बाद घनश्यामदासजी को अपने छोटे भाई ब्रजमोहन बिड़ला का सहारा था। उद्योगपति-समाज में 'प्रिंस' यानि राजकुमार की हैसियत से बी० एम० जाने जाते थे। युवा ब्रजमोहन को घनश्यामदासजी ने ही विधिवत व्यापार में दीक्षित किया था। अपनी सभी विदेश-यात्राओं के दौरान उन्होंने औद्योगिक प्रश्नों और आर्थिक समस्याओं पर बराबर उन्हें विस्तृत पत्र लिखे।

सन उन्नीस सौ सतहत्तर में बंबई में घनश्यामदासजी को दिल का दौरा पड़ा, रात के ठीक दस बजकर पैंतालीस मिनट पर। नेपियन सी रोड-स्थित अरविंद दलाल के यहां खाना था। आठ बजे भोजन करके साढ़े आठ बजे इल्प्लाजो के अपने फ्लैट में आये थे। सोने गये, दस बजे के लगभग उन्हें छाती में कुछ दर्द महसूस होने लगा।

उन्होंने समझा कि गैस की कोई तकलीफ है। बंबई में मौजूद परिवार के सदस्य उनके पास उपस्थित हो गये। घनश्यामदासजी ने यह स्वीकार नहीं किया कि उन्हें दिल का दौरा पड़ा है। इसीलिए किसी हार्ट-स्पेशलिस्ट को न बुलाकर प्रसिद्ध फिजीशियन डा० जे० सी० पटेल को उपचार के लिए बुलाया गया। ऐसे क्षणों पर घनश्यामदासजी ने सबसे पहले ब्रजमोहन को याद किया। कलकत्ता से जब बी० एम० आये तब उन्होंने ही बंबई के प्रख्यात हार्ट-स्पेशलिस्ट डा० एन० जे० शाह को भाईजी के उपचार में लगाया। घर-परिवार के तमाम लोग तब तक वहां पहुंच गये थे। पर बी० एम० की आज्ञा से रोगी के कमरे में कोई बेवजह नहीं जा सकता था। यदि कोई भी घनश्यामदासजी के कमरे में जाता तो वह तपाक से बोल उठते, "के खबर है ?... और कोई नई जूनी ?"

घनश्यामदासजी डाक्टर से एक ही बात कहते, "डा० पटेल, मुझे बहुत दवाएं मत दो। मुझको अगर मरना है, तो शांति से मरने दो। मेरे जीवन की ऐसी कोई इच्छा शेष नहीं है, जिससे मुझे कोई परेशानी हो।"

तीसरे दिन घनश्यामदासजी प्रातःकाल नहा-धोकर घूमने के लिए तैयार हो गये। इस दृश्य को देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये और घबरा भी गये। डाक्टरों ने इस तरह घूमने जाने के लिए मना किया। घनश्यामदासजी ने पूछा, "ऐसा मुझे क्या हुआ है कि मैं घूमने न जाऊं ?"

इसके उत्तर में डाक्टरों ने उन्हें जो आवश्यक बताया, उसे उन्होंने अनुशासन मानकर स्वीकार कर लिया, किंतु उन्होंने यह कभी स्वीकार नहीं किया कि वे बीमार हैं। दिल का दौरा पड़ने से घनश्यामदासजी के मन पर क्या बीती, इस बारे में उन्होंने कभी किसी से कुछ कहा नहीं। हृदय-रोग और दिल का दौरा पड़ने की बातें सुनना और सुनाना उन्हें अच्छा न लगता। इसका एक फल यह हुआ कि व्यावसायिक स्तर पर वे पुत्रों, पौत्रों तथा अन्य स्वजनों के प्रति पहले से भी अधिक तटस्थ हो गये। किंतु व्यक्तिगत स्तर पर वे कुछ भावुक जरूर हो गये। किसी हृदय-रोगी पर उद्योग-व्यापार का कोई बड़ा दायित्व सौंपना उन्हें अब अनुचित लगने लगा। शरीर से स्वस्थ और चुस्त-दुरुस्त लोग उन्हें शुरू से पसंद और ढीले-ढाले अस्वस्थ लोग सदा नापसंद थे। अब यह प्रवृत्ति बहुत जोर पकड़ गयी। बंबई नगरी अब उन्हें भारत की सबसे अच्छी जगह अनुभव होने लगी। उनका दूसरा प्रिय नगर दक्षिण भारत में बंगलौर था। इधर ऋषिकेश में गंगालहरी एकांतवास के लिए थी। बंबई में, विशेषकर रविवार के दिन, वे अपने संबंधियों के परिवार के बच्चों को दोपहर के भोजन पर आमंत्रित करने

लगे। बच्चों के साथ वे खाना खाते, उनसे बातें करते और उन्हें खेलते देखकर उन्हें अपार प्रसन्नता होती। इधर अब वे राजश्री, जयश्री, मंजुश्री, कुमारसंभव में विशेष रुचि लेने लगे। तेईस अगस्त उन्नीस सौ छहत्तर को उन्होंने सरला-बसंतकुमार की सबसे छोटी लड़की मंजुश्री को, जो अब मंजुश्री शैलेश खेतान हो चुकी थी, अपनी गीता की वह प्राचीन प्रति भेंट की जिसका उन्होंने गत साठ वर्षों से नियमित पाठ किया था। गीता की उस प्रति को मंजुश्री को भेंट करते हुए उन्होंने लिखा, "इस गीता का पाठ हमने बहुत वर्षों तक किया है। तुम भी करना।"१९०

बसंतकुमार की बड़ी बेटी जयश्री को, जो अब जयश्री प्रकाश मोहता हो चुकी थीं, जूरिक से एक स्वीमिंग पूल का चित्र भेजते हुए लिखा, "इस चित्र में स्वीमिंग पूल है, वैसा बसंत-विहार में बनाना चाहिए१९१।" उसे जूरिक से दूसरा पत्र लिखते हैं, "मंसूरी में खूब खेलना और चिट्ठी भेजना।"१९२

बंबई-स्थित रेजीडेंट एक्जीक्यूटिव विजयमल सांड के शब्दों में, "अब वह इशारे से आर्डर देते थे, जैसे 'वो भी काम आपको करना है न'।

"यह सुनने वाले की परीक्षा थी कि वे किस काम को पूरा करने की बात कह रहे है। जो आज याद आ गया, उसे आज ही पूरा कर दें, ताकि आगे दूसरा काम कर सकें।"१९३

सन उन्नीस सौ सतहत्तर के मई माह मे विश्राम करने वे स्विट्जरलैंड-जुग गये। साथ में सरलाजी और बसंतकुमारजी थे। अब विदेश-यात्रा पर वे अपने साथ चार-पांच लोगों को अवश्य रखने लगे थे। इससे पहले वे केवल अपने सचिव के साथ जाते थे। अन्य व्यक्तियों को औद्योगिक परामर्श के लिए आवश्यक होने पर ही बुलाते थे। वे मई से जून, पूरे दो महीने तक जुग में विश्राम करते रहे। सुबह-शाम नियमित रूप से घूमना और दिन में या तो पुस्तकें पढ़ना या यूरोप, इंग्लैंड, अमेरिका से मिलने वाले मित्रों से विचार-विमर्श करना। इन्हीं दिनों विजयमल सांड उनसे मिलने गये। देखते ही पूछा, "यहां क्या देखा? कौन-सी चीज इधर महत्त्वपूर्ण लगी?"

विजयमल ने कहा, "यहां सब कुछ आटोमेटिक है, यह मुझे बहुत अच्छा लगा।"

घनश्यामदासजी ने निश्चित स्वर में कहा, "मुझे यह पसंद नहीं है। भारत में

---

१९०. मंजुश्री को लिखा पत्र
१९१. जयश्री को लिखा पत्र
१९२. वही
१९३. विजयमल सांड से भेंटवार्ता

इतनी ज्यादा आबादी है। हमें ऐसा कार्यक्रम बनाना चाहिए कि अपने देश में अधिक-से-अधिक लोगों को काम-धंधा मिले। अपने देश में कोई हाथ कभी बेकार न रहे, ऐसी मेरी इच्छा है।''

जुलाई में वे बंबई लौट आये। इन दिनों श्रीमद्भागवत के प्रति उनका आकर्षण अधिक बढ़ गया था। पूरे मनोयोग से गीता, रामचरितमानस और श्रीमद्भागवत का अध्ययन करने लगे। पुत्रवधू सरला से उन्होंने कहा था, ''जब मैं दिल का दौरा पड़ने के बावजूद जिंदा रह गया, तब मुझे ऐसा लगा कि भगवान ने मुझे मौत के मुंह से वापस भेजा है, तो इसीलिए कि वह मुझसे कोई ठोस और भला काम करवाना चाहता है। श्रीमद्भागवत का अध्ययन करके श्रीकृष्ण भगवान के विषय में मैं जो पुस्तक लिखना चाहता था, उसे पूरा करने के लिए शायद मुझे भगवान ने जिंदा रखा है।''

भागवत के आधार पर अपनी पुस्तक 'कृष्णं वंदे जगद् गुरुम्' उन्होंने सन उन्नीस सौ अठहत्तर में प्रकाशित करायी। कई विद्वानों की राय में 'कृष्णं वंदे जगद् गुरुम्' घनश्यामदासजी की सर्वश्रेष्ठ कृति है। बाद में उन्नीस सौ उनासी, अस्सी, इक्यासी—इन तीन वर्षों में वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस आदि ग्रंथों के आधार पर भगवान श्रीराम के बारे में घनश्यामदासजी ऐसी ही पुस्तक तैयार करने में जुटे। इस संबंध में उन्होंने बहुत-सी सामग्री एकत्र की, नोट्स तैयार किये, लेकिन पुस्तक वह पूरी कर नहीं पाये।

सन उन्नीस सौ अठहत्तर के मार्च-अप्रैल ये दोनों महीने वे दिल्ली रहे। नयी दिल्ली-स्थित अपने 'मंगलम' में उनके बैठने की कुर्सी के सामने उनके चित्र के पास जब स्वर्गीया पत्नी महादेवीजी का चित्र लगा दिया गया, तो वे बहुत प्रसन्न हुए। सरलाजी से बोले, ''अब तुम्हारी मां के इस चित्र से मुझे अच्छी 'कंपनी' मिल जाती है।'' इस बात को वे अक्सर दोहराते। जो विस्मृत हो चुका था, अब उसकी स्मृतियां जाग उठी थीं।

घनश्यामदासजी को अब तक जितनी प्रतिष्ठा, यश और सम्मान प्राप्त हुआ था, उससे अधिक पाने की उनकी कोई इच्छा शेष नहीं रह गयी थी। वे एक ऐसे 'विरल' मानसिक स्तर पर पहुंच चुके थे, जहां उन्हें कोई और कुछ नहीं दे सकता था, न उन्हें कोई किसी तरह की चोट पहुंचा सकता था। हां, उनसे प्राप्त अवश्य किया जा सकता था। वे हर तरह से 'स्वधर्म' का जीवन जी रहे थे। वे जीवन-भर संयमित रहे, इसलिए यदि कोई गलती करता तो डांटते खूब थे, परंतु कभी किसी को अपशब्द नहीं कहा। वे दूध में खजूर डालकर पीते थे, पर उपवास कभी नहीं किया। उनकी जिंदगी में कभी कोई परदा नहीं था, कोई रहस्य नहीं था। वे बड़ी-से-बड़ी बात को सबके सामने कह

देते थे। बिलकुल साफ बोलते थे। अगर किसी को उनकी बात से दुख लगता, तो वे उसे बैठाकर समझा देते थे। उनकी ऐसी चरित्रगत विशेषताएं कम लोगों में पायी जाती हैं।

घनश्यामदासजी की दिनचर्या अपने ढंग की हो गयी थी। कभी कमरे में घूमते, कभी मौन बैठे रहते, कभी सोचते तो कभी कुछ लिखने लगते। उन दिनों बंबई के इल्प्लाजो के उस फ्लैट में जब तमाम बच्चे आ जाते और घनश्यामदासजी उनसे घिर जाते, बच्चे उनसे कुछ सुनने के लिए जिद करते तो वे बच्चों को किस्से सुनाया करते थे। जब वहां कोई नहीं होता था तो वे कोई किताब पढ़ने लगते अथवा अपना हारमोनियम बजाते हुए कोई भजन गाने लगते। इन दिनों उनका प्रिय भजन था :

नाथ, मैं थारो जी थारो।
चोखो, बुरो, कुटिल अरु कामी, जो कुछ हूं सो थारो॥
बिगड़्यो हूं तो थारो बिगड़्यो, ये भी मनै सुधारो।
सुध यौ तो प्रभु सुध यौ थारौ, था सूं कदे न न्यारो॥
बुरो, बुरो, मैं भोत बुरो हूं, आखर टाबर यारो।
बुरो कहाकर मैं रह जास्यूं, नाव बिगड़सी थारो॥
थारो हूं, थारो ही बाजूं, रहस्यूं थारो, थारो॥

चैत्र रामनवमी को घनश्यामदासजी का जन्म-दिन 'मंगलम' में धूमधाम से मनाया गया। घर-परिवार के प्रायः सभी लोग इस अवसर पर उपस्थित थे। इस धूमधाम में पिलानी का वह हीरा, जिसका प्रसिद्ध रेखाचित्र 'बिखरे विचारों की भरोटी' में संग्रहीत है, उसके वंश का एक आदमी घनश्यामदासजी से मिलने आया था। घनश्यामदासजी ने उसे देखते ही पहचान लिया कि यह कोई खास आदमी है। उसने बाबू का पैर छूकर कहा, 'मैं हीरा का परपोता हूं।' बाबू उसे देखते रह गये। उसके अंतिम छोर पर जैसे वही हीरा आज भी धुंधलके में खड़ा है। हीरा तब उस पुराने घनश्याम-दासजी से करीब बावन वर्ष बड़ा था। उस भीड़-भाड़ में उससे मिलकर उन्हें फिर एक बार उस सुदूर और धुंधले अतीत में प्रवेश करना पड़ा, जो आज बहुत कठिन था। उन्हें लगा कि वे एक ऐसे स्थान पर पहुंच गये हैं, जहां चारों ओर केवल कोहरा-ही-कोहरा है। बाल्यकाल के कच्चे दिमाग पर खिंचा हीरा का वह धुंधला-सा चित्र, समय की रफ्तार की घिसावट से यद्यपि अस्पष्ट हो गया है, फिर भी सामने वही हीरा जैसे फिर आ खड़ा है। हीरा के उस जमाने में बिड़ला-हवेली में सिर्फ दो ऊंट थे।

आज घनश्यामदास बिड़ला ने अपने पौरुष से जिस औद्योगिक साम्राज्य का निर्माण किया है, उसका 'टर्न ओवर' प्रतिदिन एक करोड़ रुपये से ज्यादा था। यही वह कोहरा था, जो हीरा के उस वंशज और घनश्यामदासजी के बीच खिंच गया था। घनश्यामदासजी सप्रेम उसे अपने ड्राइंगरूम में ले जा रहे थे। वह श्रद्धावश उनके चरणों में बिछा जा रहा था। 'मंगलम' में उस समय उपस्थित तमाम लोग इस दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित थे।

पहली मई को घनश्यामदासजी दिल्ली से बंबई लौट आये। तीन मई को वे बंबई से सीधे लंदन गये। लंदन में ही रहकर वे अमेरिका के बैंकर्स, मैन्यूफैक्चरर्स और उद्योगपतियों के प्रतिनिधियों से मिलते। अमेरिका जाना अब उनके लिए उतना आकर्षक नहीं रह गया था। लंदन में एक माह रहकर वे जून में जेनेवा गये, फिर जुग आये। जून के अंतिम सप्ताह में वे बंबई वापस लौटे। जुलाई के मध्य में वे फिर दिल्ली आये। दिल्ली में अगस्त के अंत तक थे। सितंबर के प्रारंभ में ही वे गंगालहरी, विश्राम-गृह में रहने चले गये। गंगालहरी में रहते हुए इस बार उन्होंने कालिदास के महाकाव्य 'रघुवंश' का अध्ययन किया। पूना से प्रकाशित इस संस्करण में मूल संस्कृत के साथ अंग्रेजी की व्याख्या को पढ़कर उन्होंने बाद में इसकी चर्चा डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी से की। उनका विचार था कि 'रघुवंश' जैसे महाकाव्य को अंग्रेजी-व्याख्या के माध्यम से पूर्णतः नहीं समझा जा सकता। गंगालहरी, विश्राम-गृह में ही रहकर इस बार उन्होंने तीन पुस्तकें और पढ़ी थीं--गालिब का 'दीवान', अबुल-फजल का 'अकबरनामा' और एंथनी सेम्पसन द्वारा लिखित 'एनाटमी आफ ब्रिटेन'।

अक्तूबर माह-भर वे बंबई रहे। प्रपौत्र कुमारमंगलम ने एक दिन घनश्यामदासजी से जिद की कि वे उनके साथ एक्वेरियम देखने चलें। वे उनके साथ 'एक्वेरियम' देखने गये। वहां विभिन्न प्रकार की मछलियों के बारे में कुमारमंगलम को इतना कुछ बताया कि वे आश्चर्यचकित रह गये कि उन्हें मछलियों के बारे में इतना सारा ज्ञान है!

सन उन्नीस सौ उनासी के अप्रैल, अगस्त और अक्तूबर माह में घनश्यामदासजी दिल्ली रहे। चैत्र रामनवमी को अपने निवास-स्थान 'मंगलम' में मित्रों और घर-परिवार के लोगों के साथ अपना जन्म-दिन मनाकर वे दिल्ली से एक दिन के लिए अपने निजी विमान से नागदा आये। अपने प्रबंधकों से बातें करते हुए उन्होंने यहां पुरानी बात फिर दोहराई कि धन-संग्रह का भोग भी संयम के साथ करना चाहिए।

अगले दिन नागदा में लंच लेकर उसी विमान से वे बंबई आये। छह मई को वे

सीधे लंदन गये । लंदन में इस बार योरुप अमेरिका के अनेक निर्माताओं से मिले । इन लोगों ने औद्योगिक क्षेत्र में जो नये संयंत्र और कलपुर्जे निर्मित किये थे, घनश्याम-दासजी ने उन सबके बारे में गहरी रुचि ली और भारतीय औद्योगिक संदर्भ में उनकी उपयोगिता की छानबीन की । उन्होंने इस दृष्टि से अध्ययन किया कि क्या ये संयंत्र भारत के उद्योग-विकास में सहायक हो सकते हैं ? उनका स्पष्ट विचार था कि भारत में जहां इतनी जनसंख्या है, वहां के उद्योग में उन संयंत्रों को लगाना अनुचित है, जो पूर्णतया स्वचालित हैं । उन्हें हर स्तर पर यूरोप और भारत का बुनियादी फर्क सदा स्मरण रहता था ।

तेईस जून को वे एयर-इंडिया से भारत वापस लौट आये । अगस्त और अक्तूबर में वे दिल्ली रहे । सितंबर माह में वे कलकत्ता, बंबई, बंगलौर रहे । इस बीच उन्हें उसी स्थान पर रहना ज्यादा अच्छा लगता, जहां उन्हें सुबह-शाम आनंद से टहलने को मिले । वे कहते थे, ''टहलना ही मेरा प्राण है । पैदल चलना ही मेरी सांस है ।''

बंबई में यदि लगातार सुबह-शाम तीन दिन तक बारिश होती रहे तो वे चौथे दिन जरूर अपने विमान से कहीं ऐसी जगह चले जाते जहां उन्हें स्वतंत्र रूप से घूमने का सुअवसर प्राप्त हो सके । वे तेरह अक्तूबर को दिल्ली से सीधे फिर लंदन चले गये । उन्हें पता चला कि लंदन का मौसम बहुत अच्छा है ।

सन उन्नीस सौ अस्सी में मार्च, जुलाई, सितंबर के महीने घनश्यामदासजी ने दिल्ली में व्यतीत किये । जनवरी, फरवरी, मार्च में वे कलकत्ता, बंगलौर, रेनुकूट, नागदा आदि स्थानों में रहे । इस बीच उन्होंने कठोपनिषद, श्रीमद्भागवत, वाल्मीकि-रामायण के अतिरिक्त पीटर फोरबाथ की पुस्तक 'द रिवर कांगो' और स्वामी रंगनाथानंद की पुस्तक 'द मैसेज आफ दि उपनिषदाज' और आर० एम० फाक्स की पुस्तक 'चाइना डायरी' पढ़ीं ।

घनश्यामदासजी गलत तरीके से काम करने या कराने के विरुद्ध थे । अपने सभी सहयोगियों से वे हमेशा कहते थे कि अपना काम करवाने के लिए कोई गैर-कानूनी तरीका न अपनाया जाये । किसी को अनुचित रूप से प्रसन्न न किया जाये । उन्होंने अपने सारे प्रबंधकों को यह निर्देश दे रखा था कि अगर सचिवालयों में कहीं कोई काम अटक गया हो और कुछ ले-देकर ही किया जायेगा, ऐसा प्रतीत हो तो मुझे बताओ । मैं अपने स्तर पर संबद्ध मंत्री से मिलकर काम करवा लूंगा । उनके समीप रहने वाले सभी प्रबंधकों का अनुभव रहा है कि व्यावसायिक और प्रशासकीय विकास के मामलों

क निर्माताओं से मिले ।
र्मत किये थे, घनश्याम-
द्योगिक संदर्भ में उनकी
किया कि क्या ये संयंत्र
विचार था कि भारत
गाना अनुचित है, जो
ा बुनियादी फर्क सदा

अगस्त और अक्तूबर
रहे । इस बीच उन्हें
ाम आनंद से टहलने
ही मेरी सांस है ।''

होती रहे तो वे चौथे
स्वतंत्र रूप से घूमने
फिर लंदन चले गये ।

घनश्यामदासजी ने
, बंगलौर, रेनुकूट,
भागवत, वाल्मीकि-
ांगो' और स्वामी
० एम० फाक्स की

द्र थे । अपने सभी
कोई गैर-कानूनी
या जाये । उन्होंने
में कहीं कोई काम
तो मुझे बताओ ।
समीप रहने वाले
विकास के मामलों

में 'बाबू' को किसी भी प्रकार की नाटकीयता पसंद नहीं थी । वे अपनी राय पर जितना कायम रहना जानते थे, उतना ही दूसरों की राय की कद्र करना जानते थे । वे अपने प्रबंधकों से कहते थे, जैसे कानून को बिना समझे औद्योगिक विस्तार करना अहितकर है, वैसे ही कानून की उलझनों से अधिक घबराना साहस और क्षमता का अभाव है । गिरने के डर से चलना ही नहीं, किसी सावधानी का नहीं अकर्मण्यता का सबूत है ।

सन उन्नीस सौ इक्यासी की बात है । तब उनकी आयु सत्तासी वर्ष की थी । इस आयु में भी वे धीर और गंभीर थे । जनवरी-फरवरी इन दो महीनों में दो बार वे बंगलोर-स्थित अपने 'वन-विहार' के विश्राम-गृह में लगातार कई दिनों तक ठहरे । एक रात उन्होंने अपने रसोइया लोकनाथ को आधी रात के समय स्वप्न में देखा । वे अपने कमरे से बाहर बरामदे में घूमने लगे । लोग दौड़े हुए उनके पास आये कि क्या बात है । 'बाबू' इस तरह आधी रात को क्यों उठ गये ? 'बाबू' ने स्वप्न की बात बताकर सोचा कि लोकनाथ की जरूर कोई इच्छा शेष रह गयी है, जो मैंने पूरी नहीं की है । इसीलिए वह स्वप्न में आया ।

लोकनाथ उड़ीसा का निवासी था, अब काम छोड़ चुका था । उस समय वहां उपस्थित सेवक पदम भी उड़ीसा का ही निवासी था । बाबू ने उससे लोकनाथ का पता-ठिकाना पूछा । आज्ञा दी कि वहां जाकर पता लगाये कि उसके घर में किस चीज की कमी है ? पता लगा कि उसका घर बनना अभी शेष था । मारे संकोच के लोकनाथ कभी घर बनवाने की बात 'बाबू' से नहीं कह पाया था । बाबू ने उसे बुलवाया और उसका घर बनवाकर ही उन्हें संतोष हुआ ।

'बाबू' मार्च-अप्रैल में दिल्ली रहे । मानस-मर्मज्ञ पंडित रामकिंकरजी उपाध्याय के रामचरितमानस प्रवचन के अंतिम दिन घनश्यामदासजी का अभिभाषण हुआ । उन्होंने पंडितजी तथा श्रद्धालु श्रोताओं को धन्यवाद दिया और कामना की, ''पंडितजी जिस प्रकार सरस और सरल शैली में मानस के गूढ़ तत्त्वों को हृदयंगम करते हुए रामचर्चा की अमृतवर्षा में श्रोताओं की जिज्ञासा शांत करते हैं और उन्हें राम-कथा-सरिताएं अवगाहन कराते हैं, आगे भी कराते रहेंगे ।''

घनश्यामदासजी का मन जब भी उचटता, वे लंदन चले जाते । इस बीच दो-तीन बार वे लंदन गये और वहां से एक नया हारमोनियम ले आये । यह वी० एल० टोन हारमोनियम था । इसी हारमोनियम में वे कई राग बजाया करते थे । जीवन के इन अंतिम वर्षों में इंग्लैंड में वे जब भी रहते, उनके अंग्रेज मित्र उनसे अंग्रेजी थियेटर

देखने का आग्रह करते। उन्हें मालूम था कि घनश्यामदासजी को अंग्रेजी थियेटर बहुत पसंद है, परंतु अपने बड़े भाई जुगलकिशोर बिड़ला के निधन के बाद उन्होंने थियेटर जाना छोड़ दिया था। चित्रकला के भी वे पारखी थे। भारत के श्रेष्ठ कलाकारों की कृतियां उनके संग्रह में थीं। खासकर उन्हें रोरिक की पेंटिंग्स बहुत आकर्षक लगतीं। कलकत्ता बिड़ला पार्क घर के ड्राइंगरूम में रोरिक द्वारा बनाये गये शुभ्र पर्वत-शिखरों के अनेक मूल चित्र लगे हुए हैं।

घनश्यामदासजी घुमक्कड़ वृत्ति के व्यक्ति थे। वे जब भी रेनुकूट, नागदा, कलकत्ता या बंबई आते, तो अपने साथ तमाम ताजी सब्जियां और फल लाते थे। एक बार वे कलकत्ता में पौत्री जयश्री-प्रकाश मोहता के घर आये और पूछा, "क्या तुझे पता है 'जुकूनी' सब्जी क्या है ? यह सब्जी कैसे बनायी जाती है ?" उन्होंने विधिवत इस सब्जी के बनाने के बारे में जयश्री को बताया।

एक बार जयश्री 'स्ट्राबेरी' खा रही थी। घनश्यामदासजी ने देखा, तो पूछा, "खाली 'स्ट्राबेरी' खा रही हो, क्रीम नहीं है क्या ?" पता चला कि उस समय घर में क्रीम नहीं थी। वे बोले, "दही ले आओ, मैं बनाता हूं दही से क्रीम, फिर देखो स्ट्राबेरी कैसे खायी जाती है।" इस तरह पूरे घर को सहज बनाये रखना उनका स्वभाव था। जहां भी वे जाते, वहां चहल-पहल हो जाती थी। वे हर विषय में इतने 'स्टाइलिस्ट' और उत्साही थे कि जहां रहते वहां प्रसन्नता बरसने लगती थी।

सन उन्नीस सौ बयासी के प्रारंभ में उन्हें खबर मिली कि छोटे भाई ब्रजमोहनजी को दिल का दौरा पड़ गया है। वे घबरा उठे। ब्रजमोहन उनके एकमात्र जीवित भाई थे और उद्योग के क्षेत्र में बिड़ला परंपरा को बढ़ाने में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। ब्रजमोहन दिल के दौरे से अस्पताल में बीमार पड़े थे। उन्हें देखने वे अपनी बहन जयदेवी के साथ अस्पताल गये तो दरवाजे पर ही ठिठककर खड़े हो गये और बोले, "मुझसे यह सब देखा नहीं जाता।"

ग्यारह जनवरी उन्नीस सौ बयासी को सुबह सवा तीन बजे ब्रजमोहनजी का देहांत हो गया। राजा बलदेवदासजी के चार पुत्रों में से अब केवल घनश्यामदासजी ही बचे थे। वे एकदम अकेले हो गये। इस अकेलेपन में उन्हें अपनी पत्नी और सभी भाइयों की याद निरंतर आती रहती।

उन्नीस सौ बयासी की गर्मियों में बसंतकुमारजी और सरलाजी ने उनसे अनुरोध किया कि वे उनके साथ केदारनाथ की यात्रा पर चलें। "आपके साथ होने से हमारे

लिए इस तीर्थ-यात्रा का महत्त्व बढ़ जायेगा। घनश्यामदासजी मान गये, लेकिन स्पष्ट कह दिया कि "अगर मैं जाऊंगा तो आम तीर्थयात्री की तरह पैदल ही जाऊंगा। मुझे डांडी, पालकी पर चढ़ना और दूसरों का बोझ बनकर केदारनाथ के मंदिर पर पहुंचना स्वीकार नहीं है। अगर शरीर की निर्बलता के कारण किसी जगह से आगे नहीं बढ़ पाया तो उसी जगह को अपना केदारनाथ मान लूंगा और वहीं शीश नवाकर लौट आऊंगा।"

बसंतकुमारजी और सरलाजी के साथ घनश्यामदासजी सहर्ष केदारनाथ की यात्रा पर चल पड़े।

केदारनाथ के मार्ग पर जगह-जगह बिड़ला-परिवार का स्वागत हुआ। लोग बताते हैं, वयोवृद्ध घनश्यामदासजी की जर्जर काया केदारनाथजी की टेढ़ी-मेढ़ी और सीधी चढ़ाई पर सचमुच चरमर कर उठी थी। कई जगह तो उनके पांव जवाब देने लगे थे, परंतु वे हार मानने को तैयार नहीं हुए। किसी में भी इतना साहस नहीं था कि उनसे कह सकता कि अब जिद छोड़िये और डांडी कर ही लीजिए। रुकते, सांस लेते, गिरते-पड़ते पुत्र बसंतकुमार के हाथ का सहारा लेते वे अंततः केदारनाथ पहुंच ही गये। उन्हें प्रसन्नता हुई कि किसी तरह एक लंबी तीर्थ-यात्रा उन्होंने पूरी कर ली है। उन्होंने कहा था, "अगर इस आयु में मेरा केदारनाथ जाना दूसरे व्यक्तियों को भी इस तीर्थ-यात्रा के लिए प्रेरित करेगा तो अच्छा ही होगा। मैं समझता हूं कि धर्म के संदर्भ में ऐसा मोह भी बुरा नहीं, क्योंकि वह सद्मार्ग पर ही ले जाता है।"

यात्रा से लौटने पर उन्हें अपनी अवस्था और बढ़ती असमर्थता का तीखा बोध हुआ। अठारह जुलाई को 'मंगलम' में बोले, "भाई, अब नब्बे बरस का होने वाला हूं। चलने-फिरने में भी थोड़ा-बहुत दूसरों का सहारा लेना पड़ता है। किसी का हाथ पकड़कर चलते मुझे बहुत असमंजस होता है। यह तो जैसे बच्चा बन जाने वाली बात हुई। पर अब शरीर में शक्ति नहीं रही। क्या किया जाये? कई बार मन करता है कि सब कुछ बसंत पर छोड़कर वानप्रस्थ धारण कर लूं, जैसे राजा रघु ने किया था।"

उनकी बात बीच में ही काटकर बसंतकुमारजी ने कहा, "नहीं जी, ऐसा कैसे होगा। फिर तो मैं भी आदित्य पर छोड़कर वन चला जाऊं।"

घनश्यामदासजी सुनकर मुस्कराये और बोले, "मैं वानप्रस्थी बना थोड़े ही हूं। मन कभी-कभी उचटता है, मगर गीता का स्मरण हो आता है और मैं काम में जुट जाता हूं।"

पच्चीस अक्तूबर को विश्राम करने के लिए वे गंगालहरी जाने को तैयार हुए। कुछ धार्मिक स्थानों की देख-रेख करने वाले देवधर शर्मा से वे बोले, "पंडितजी, चलिए, गंगालहरी चलें।" उन्होंने कहा क्या, वे चल दिये और छब्बीस तथा सत्ताईस दो दिन वे गंगालहरी रहे। बसंतकुमारजी, सरलाजी के अलावा वहां उनके साथ रामकृष्ण बजाज, रामनिवास जाजू और उनकी पत्नी यशोदा आदि थे।

इन दिनों जब भी घनश्यामदासजी के विषय में प्रकाशित कोई सामग्री उनको दी जाती, वे कहते, "अरे भाई, मैं खुद जानता हूं कि मैं क्या हूं। मुझसे ज्यादा और कौन जानेगा मुझे।"

'जीवनचरित' लिखने की बात उठाये जाने पर वे स्पष्ट कहते, "भारतीय लोग और चीजें तो लिखना जानते हैं, जीवनचरित नहीं। मेरे बारे में लिखने बैठेंगे तो मुझे देवता ही बना देंगे।"

यह कहे जाने पर कि आप लोकप्रिय हैं, लोगों में आपके प्रति बहुत श्रद्धा है, वे मुस्कराकर उत्तर देते, "मुझे लोग मेरी उम्र, मेरा अनुभव और मेरी हैसियत देखते हुए सम्मान भले ही देते हों, मगर मुझे अच्छी तरह पता है कि मैं लोकप्रिय नहीं हूं। मैं तो लोगों की भूलें बता देता हूं, उनकी आलोचना करना और उन्हें गलत काम करने से रोकना अपना कर्त्तव्य मानता हूं। इसलिए मैं लोकप्रिय कैसे हो सकता हूं? मैं तो चुनौती हूं। लोगों को उनकी जिम्मेदारियां बताता रहता हूं—यह करो। अभी यह करो।"

इन दिनों वे अक्सर कहा करते थे कि पैसा गुणों का प्रमाण-पत्र नहीं है, गुणों का प्रमाण-पत्र है सदाचार। इसलिए बड़े-से-बड़े लोग, उनसे बात करने में घबराते थे। कोई खुलकर उनसे देर तक बात नहीं कर पाता था। बात करते ही वे वक्ता को जड़ से पकड़ लेते थे। कभी-कभी तो वे उसे जड़ से उखाड़ तक लेते थे। प्रशंसा से वे परेशान हो उठते थे। चापलूसी उनके लिए असह्य थी। आलोचना का वे अपने निराले ढंग से आनंद लेते थे। इस प्रसंग में वे कभी किसी से किसी तरह घबराते नहीं थे।

जीवन के इस अंतिम चरण में आकर उद्योग के बारे में अक्सर दुर्गाप्रसाद मंडेलिया से विचार-विमर्श जरूर करते थे। मंडेलियाजी पर वैसे भी उन्होंने बहुत-सा कार्य-भार सौंप रखा था और उन पर पूरा विश्वास था।

ताराचंद साबू बचपन से लक्ष्मीनिवासजी के साथी रहे हैं। और इस प्रकार घनश्यामदासजी के भी निकट थे। साबूजी का कहना है कि जिस काम में घनश्यामदास-

जी लगे, जब तक वे पूरा न हो, वे निश्चित नहीं रहे। काम के अलावा फालतू की चिंता करना उनके स्वभाव में नहीं था। यहां तक कि वे अपने कार्यक्रम के बारे में भी स्वयं अपने ऊपर कोई भार नहीं लेते थे। उन्हें कहां जाना है, यह चिंता उनकी नहीं थी।

ताराचंदजी से उन्होंने अक्सर कहा है, "सवारी अपनी, बाट खुदा की।"

बंबई इल्प्लाजो फ्लैट की बात है, कहीं जाने के लिए घनश्यामदासजी आदित्य विक्रम की पत्नी राजश्री के साथ लिफ्ट से नीचे उतर रहे थे। राजश्री ने पूछा, "दादोजी, आपके साथ कौन जा रहा है?" उन्होंने सहज ही कहा, "मेरे साथ घनश्यामदास जा रहा है।" नीचे आकर बोले, "घनश्यामदास इज माई बेस्ट कंपनी।"

आठ जनवरी उन्नीस सौ तिरासी संगीत कला मंदिर, कलकत्ता द्वारा आयोजित रामकिंकरजी उपाध्याय के रामचरितमानस पर वार्षिक प्रवचन-अनुष्ठान के अनवरत पच्चीस वर्षों की संपूर्ति आयोजन में घनश्यामदासजी ने जो अभिभाषण दिया, वह कई अर्थों में अविस्मरणीय है। वह उनके जीवन का अंतिम अभिभाषण था। वह उनके संपूर्ण जीवन के केंद्रीय बिंदु को समझने का मर्म है। इसी अभिभाषण में उन्होंने कहा, "मन, यह एक बड़ा अजीब पंखी है। इसको नियंत्रण करना यह एक बड़ा कठिन खेल है। ··· तो कृष्ण ने कहा कि हां, यह चंचल है, किंतु वैराग्य और अभ्यास से वश में आ सकता है। ··· मन के निरोध के लिए भावना का उद्‌भव आवश्यक है। मन की इस गूढ़ नीति-विधि को समझना और समझाना दुष्कर कार्य है। भावना जाग्रत करने के लिए भी मन का नियंत्रण आवश्यक है और मन के निरोध के लिए भी मन का विकास आवश्यक है। अद्‌भुत बात तो यह है कि मन ही मनुष्य को बंधन में डालता है और मन ही उस बंधन से मुक्ति देता है। 'मनएव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्ष्यो'।"

इस अभिभाषण के अंत में घनश्यामदासजी ने कुछ स्पष्टीकरण करते हुए कहा, "मैं जो कुछ कह रहा हूं, वह असल में तो आपको नहीं, मैं अपने आपको ही कह रहा हूं। आप सामने बैठे हो, इसलिए आपको संबोधन मात्र करता हूं, लेकिन कथन तो अपने आपको ही है। जैसे सीता ने राम से कहा था कि 'स्मारये न त्वां शिक्षये' उसी तरह से मैं महज आपको स्मरण करा रहा हूं।"

अपने कथन को जिस 'सम' पर उन्होंने समाप्त किया, वह किस राग का अंत है, जो कभी नहीं भूलेगा :

"मैं गाने के लिए यहां आया था, पर
गा नहीं सका।

वीणा के तारों को कड़ा किया,
ढीला किया, पर स्वर बना नहीं,
शब्द भी नहीं बन पाये।
दिन भर मेरा आसन बिछाने में ही बीत गया।
अब रात हो गयी।
दीपक जला न पाया तो आपको कैसे पुकारकर बुलाऊं
मैंने पद-ध्वनि तो सुनी पर देख नहीं पाया,
गाने की चाह मेरे मन में बनी हुई है कि मैं गाऊं
पर अब तक मैं गा नहीं सका
मेरी आशा है कि मैं गा सकूंगा।''[१९४]

अपने जन्मदिवस के अवसर पर, इन वर्षों में घनश्यामदासजी प्रायः दिल्ली रहते थे। यहां अपने घर-परिवार, निकट संबंधियों से उनकी भेंट हो जाती थी। इस वर्ष वे अपने जन्म-दिन से पहले चौबीस फरवरी को यहां आये और एक सप्ताह तक रहे। यहां रहकर उन्होंने तुलसीदासजी के रामायण की 'संजीवनी टीका' और 'विजया-टीका', इन दोनों ग्रंथों को दोबारा ध्यान से पढ़ा। साथ ही स्वामी रंगनाथानंद की पुस्तक 'इटरनल वेल्यूज फार चेंजिंग सोसायटी' और विनोबा भावे का 'विष्णु सहस्र-नाम', राधाकृष्णन की 'एन आइडियलिस्ट व्यू आफ लाइफ', सेमुअल जानसन की 'बायोग्राफी' और 'ज्ञानेश्वरी' तथा 'श्रीमद्भागवत' आदि पुस्तकों को पढ़ा।

मार्च में उन्होंने बंगलौर की यात्रा की। बंगलौर के निकट उपवन में स्थित अपने वन-विहार में रहते हुए वे बंगलौर तथा दक्षिण के अपने तमाम मित्रों और परिचितों को मिलने के लिए बुलाते रहे। इस मिलन में जैसे वे अंतिम विदाई का आभास दे रहे थे।

नौ अप्रैल को वे नयी दिल्ली आये। 'मंगलम' में उनकी अंतिम वर्षगांठ थी। इस बार उनका जन्म-दिन चैत्र रामनवमी के हिसाब से इक्कीस अप्रैल को पड़ रहा था। पुत्रवधू सरलाजी ने यह संकल्प किया कि चौदह अप्रैल से इक्कीस अप्रैल तक रामचरितमानस का 'नवाह्न पारायण' का मंगलमय आयोजन संपन्न हो। त्रिलोक मोहनजी के आचार्यत्व में प्रातः साढ़े सात बजे से मध्याह्न ग्यारह बजे तक बिड़ला

१९४. रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता सं

मंदिर के गीता-भवन में यह पारायण विधिवत होने लगा। तीसरे दिन इस 'नवाह्न पारायण' में लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला भी सम्मिलित हुए। सबके साथ बैठकर उन्होंने भी उस दिन विधिवत रामायण-पाठ किया।

घनश्यामदासजी अपने जन्म-दिन इक्कीस अप्रैल को प्रातः साढ़े आठ बजे बिड़ला मंदिर में आये। बसंतकुमारजी का दायां हाथ पकड़े वे सीधे गीता-भवन पहुंचे जहां मानस-पारायण का मंगलमय दृश्य चल रहा था। उनके पीछे इस आयोजन के प्रबंधक बाबूलाल बियाणी, देवधर शर्मा, मदनलाल आनंद, मनोहरलाल ओझा आदि खड़े थे। जिस आस्था और उत्साह के साथ उन्होंने पं० त्रिलोक मोहन के साथ अन्य लोगों को प्रणाम किया और जिस निष्ठा से सबका प्रणाम स्वीकार किया, वह दृश्य अनुपम था। दोपहर के समय उन्होंने सरला से कहा, "नवाह्न पारायण में जैसे साक्षात् भक्ति का नृत्य हो रहा था। ···मुझे बहुत संतोष मिला है।"

जन्म-दिन के अवसर पर पारायण के आचार्य त्रिलोक मोहनजी, घनश्यामदासजी के पास आये। उनसे मिलकर उन्होंने फिर अपना वह आनंद व्यक्त किया। बाद में वे स्वामी अखंडानंदजी से भी मिले थे। घनश्यामदासजी का स्वभाव था, वे पूज्य पुरुषों को स्वतः बुलाते नहीं थे, बल्कि स्वयं उनसे मिलने जाते थे। जिसकी भी उनसे एक बार भेंट हो जाती, वह भेंट सदा मिलन में परिवर्तित हो जाती।

इस जन्म-दिवस के अवसर पर उनसे मिलने कलकत्ता, बंबई, बंगलौर, रेनुकूट, ग्वालियर, पिलानी आदि सभी स्थानों से बहुत से लोग आये थे। पिलानी के कई वृद्ध लोग भी आये थे। इस जन्म-दिन पर सबसे छोटी पौत्री मंजुश्री ने पूज्य दादोजी को 'ग्रीटिंग्स' देते हुए अपना यह भाव व्यक्त किया था, "इट इज ग्रेट टू हैव ए ग्रैंड फादर---डियरेस्ट दादो।"

घनश्यामदासजी तीस अप्रैल तक 'मंगलम' में रहे। तीस की दोपहर को रामनिवास जाजू ने उन्हें एक व्यक्तिगत पत्र दिया था, जिसमें आग्रह किया था कि अपनी 'बायोग्राफी' के बारे में अब उन्हें कोई निर्णय अवश्य लेना चहिए। घर वाले भी चाहते हैं। उस पत्र को पढ़कर पांच बजे घनश्यामदासजी ने फोन से जाजू को सूचना पहुंचायी कि रात को खाने पर आ जाओ। उस रात भोजन के बाद उन्होंने जाजू से कहा, "जुग (स्विट्जरलैंड) आ जाओ, उस विषय में वहीं शांति से बात करूंगा। ··· मैं कल सुबह उड़ जाऊंगा।" 'मैं कल सुबह उड़ जाऊंगा' इस बात को उन्होंने कई

बार दोहराया। 'उड़ जाऊंगा' इस तरह कहा, जैसे वे लोक-संगीत का कोई पद दोहरा रहे हों :

उड़ो रे हंसा जाओ गगन में
खबरा लाओ मेरे प्रीतम की
मैं प्रीतम की, प्रीतम मेरा,
गाठां घुल गयीं रेशम की। १९५

दस से सत्रह मई तक वे 'जुग' में थे। इस बार वहां उनके साथ उनके परिवार के कई लोग थे। उनकी प्रिय पुत्री चंद्रकलाबाई थीं। पौत्री जयश्री प्रकाश मोहता थी। जयश्री के साथ विनोद करते हुए उन्होंने पूछा था, "अरे ओ, 'रोदां'१९६ कौन था ? पिलानी में हुआ था क्या ?"

जयश्री को हंसाते हुए कहा था, "इतना गंभीर मत रहा करो। प्रसन्न रहो।" चौदह मई को बातों-ही-बातों में उन्होंने फिर कहा था, "देखो, कभी किसी को किसी चीज के लिए मना नहीं करना चाहिए।"

इस बात को राजस्थानी कहावत में बांधकर कहा—

बांस चढ़े नटनी कहे,
हुयो न नट ज्यों कोय,
मैं नट करे नटनी हुई,
नटै सो नटनी होय।

जुग में बेटी शांतिबाई भी काकोजी के साथ थीं। घर-परिवार के अनेक लोग वहां इकट्ठे हो गये थे। प्रतिदिन सुबह नाश्ते के बाद वे अपनी बेटियों, पोतियों के साथ घूमने निकल जाते और लगभग पौने दो घंटे तक वे जुग में सबके साथ सैर करते।

मई के अंतिम सप्ताह में जुग से योरुप होते हुए वे लंदन पहुंचे। लंदन के पार्क टावर्स के जिस फ्लैट में वे पिछले अनेक वर्षों से ठहरा करते थे, वहीं इस बार भी ठहरे। इस प्रवास में उन्होंने शोपेन हावर और स्वीनोजा की दर्शन संबंधी पुस्तकों का अध्ययन किया। साथ ही 'मांडूक उपनिषद' और 'कठोपनिषद' को भी नये सिरे से पढ़ा।

शनिवार, ग्यारह जून उन्नीस सौ तिरासी को दो मंजिल पर स्थित इस फ्लैट में वे प्रसन्नचित्त उठे और अपनी नियमित दिनचर्या आरंभ की। सुबह ही उन्होंने देश-विदेश से आये हुए सभी 'टेलेक्स' देख लिये। श्यामलाल पारीक को उनके उत्तर

१९५. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ २५६
१९६. विश्वविख्यात चित्रकार

भी लिखवा दिये। हिंडालको से संबंधित रेनुसागर के विकास का प्रोग्राम बना दिया और उसे कंपनी के प्रेसीडेंट आसकरण अग्रवाल, जो वहां उस समय उपस्थित थे, अपने निर्देशों के साथ थमा दिया। इस प्रकार अपने नियमित काम को निपटाते हुए सुबह के आठ बज गये। उनके नाश्ते का समय हो गया। नाश्ता समाप्त होने वाला था कि इस बीच मैसूर सीमेंट के नंदलाल हमीर वासिया और ग्वालियर रेयन के वाइस प्रेसीडेंट सुशीलकुमार साबू भी वहां पहुंच गये।

नाश्ता समाप्त कर उन्होंने श्यामलाल से कहा, 'दुर्गा से बात कराओ,' फिर कहा, 'आदित्य से बात कराओ', पर कहीं लाइन नहीं मिल पा रही थी। फिर कहा कि 'दिल्ली बी० एन० सक्सेना से बात कराओ।' पर इनमें से किसी से भी बात नहीं हो सकी।

तब वे दैनिक समाचार पत्र पढ़ने लग गये। आठ बजकर पैंतालीस मिनट पर उन्होंने कहा, 'चलो घूमने चलते हैं।' नंदलाल हमीर वासिया और सुशीलकुमार साबू के साथ वे लिफ्ट से नीचे उतर आये और कहा कि 'आज बारिश हो सकती है, इसलिए हाईड पार्क नहीं जाएंगे। इधर फुटपाथ से चलते हैं, ताकि बारिश आ भी गयी तो टैक्सी से लौट आएंगे।'

वे अपने दोनों सहयोगियों के साथ पिकाडेली रोड पर चलते रहे। रास्ते में बातें होती रहीं, चौदह जून को वापस इंडिया लौटने की। पिकाडेली रोड से रीजेंट स्ट्रीट में उन्होंने प्रवेश किया।

चलते-चलते वीरास्वामी का रेस्टोरेंट भी पार हो गया और उसके आगे 'ब्राडबरी स्टोर्स' के फुटपाथ पर नौ बजकर पंद्रह मिनट के समय उनके पांव जरा लड़खड़ाये। नंदलाल हमीर वासिया ने दाहिनी ओर से और सुशीलकुमार साबू ने बायीं ओर से उन्हें सहारा देने के लिए पकड़ लिया। तब उन्होंने अपने हाथों से इन दोनों को हटा दिया और पांच-दस सेकेंड के लिए आंख मींचकर खड़े हो गये। नंदलाल के पूछने पर कि बाबू क्या हुआ ? उत्तर मिला, 'कुछ चक्कर सा आ गया था, पता नहीं क्यों ?'

तत्काल एक टैक्सी रोकी गयी और घनश्यामदासजी स्वयं बिना किसी का सहारा लिए उसमें बैठ गये। टैक्सी उनके पार्क टावर्स के फ्लैट की बिल्डिंग की ओर बढ़ी। टैक्सी पार्क टावर्स के सामने आकर रुकी। सुबह के नौ बजकर पच्चीस मिनट हुए थे। नंदलाल के कंधे पर हाथ रखते हुए वे टैक्सी से स्वयं उतरे। फिर चलकर बिना किसी सहायता के अपने आप दरवाजे पर पहुंचे। वे पहले दरवाजे के अंदर प्रवेश कर

चुके थे और भीतर के दरवाजे पर पहुंचने वाले थे कि इस आधे मिनट में ही उन्हें जोर से सांस आने लगी। पैर लड़खड़ाये। नंदलाल और सुशील ने सहारा देकर उन्हें वहीं पड़े सोफे पर लिटाया। लगभग दो मिनट तक घनश्यामदासजी ने लंबी-लंबी सांसें लीं फिर 'सम' पर आकर सहज ही निःश्वास हो गये। इस बीच डाक्टरों को बुलाने सुशील बाबू चले गये। नंदलाल ने अपने हाथों में उनका सिर रखा, पूछा, 'बाबू, क्या तकलीफ है ?' बाबू बिलकुल निःशब्द थे। नंदलाल ने उनकी नब्ज देखी तो माथा ठनक गया कि नाड़ी तो गायब लग रही है। उनका फ्लैट दो तले पर था। वहां से अब तक खांडू नौकर पानी लेकर आया और साथ में श्यामलाल भी। सब एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे।

सुशील बाबू के फोन करने पर गंगाप्रसाद बिड़ला, उनकी पत्नी निर्मलाजी आपत्काल की औषधियां लिये तत्काल आ पहुंचे। उनके पहुंचने के दो मिनट पहले ऐंबुलेंस वाले भी पहुंच गये थे और उन्होंने उपचार शुरू कर दिया। टाई ढीली कर दी। जूते निकाल दिये और छाती पर जोर-जोर से मालिश शुरू की गयी और इसके बाद ही ऐंबुलेंस वालों ने उन्हें सोफे से उठाकर स्ट्रेचर पर लिटाया और ऐंबुलेंस पर चढ़ा दिया। लोग ऐंबुलेंस में बैठ गये। ऐंबुलेंस तेजी से मिडिल सेक्स अस्पताल पहुंची, जहां डाक्टर और नर्सें बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे। वे स्ट्रेचर को आपातकालीन-कक्ष में ले गये। कक्ष के दरवाजे बंद कर दिये गये। साथ आये हुए चारों लोग बाहर प्रतीक्षालय हाल में एक बेंच पर बैठ गये। नौ बजकर पैंतालीस मिनट हुए होंगे, एक डाक्टर ने आकर कहा, 'वी ट्राइड आवर बैस्ट, बट इट इज आल ओवर।' (हमने अपनी ओर से पूरी कोशिश की लेकिन व्यर्थ रही)।

घनश्यामदासजी की मृत्यु का समाचार सुनकर मानो वज्रपात हो गया। लंदन के प्रत्येक बड़े अस्पताल में एक अलग स्थान होता है, जहां मृतक के संबंधियों के पहुंचने तक शव को रखा जा सकता है। इस स्थान को 'चेपल आफ रेस्ट' (शांति की वेदी) कहते हैं। घनश्यामदासजी का शव वहां रखा गया। गंगाप्रसादजी और निर्मलाजी ने तुरंत गंगाजल मंगवाने का प्रबंध किया। गंगाजल आने पर उन्होंने स्वर्गीय घनश्यामदासजी के मुंह में गंगाजल डाला। पानी शरीर के भीतर चला गया, इससे सबको संतोष मिला। इसी बीच मृत्यु का समाचार सुनकर कृष्णकुमारजी के सबसे बड़े और दूसरे दामाद विमलकुमारजी नोपानी और सरोजकुमारजी पोद्दार भी अस्पताल पहुंच गये। वे उस समय लंदन में ही थे। स्वर्गीय घनश्यामदासजी के मुंह में उन दोनों ने भी गंगाजल डाला।

इसी बीच कुछ मिनटों में ही दिल्ली में दुर्गाप्रसाद मंडेलिया और बंबई, आदित्य विक्रम को फोन कर दिया गया कि 'बाबू' अब नहीं रहे ।

अस्पताल में उनके शव को सफेद कपड़े से ढक दिया गया । इस बीच अंडरटेकर्स की तलाश की गयी ताकि शव को उत्तम रूप से सुरक्षित रखने की व्यवस्था की जा सके। उधर लंदन-स्थित भारतीय विद्या-भवन से पंडित कृष्णमूर्ति को बुला लिया गया । गीता-पाठ प्रारंभ हो गया जो ग्यारह बजे से दो बजे दिन तक चला । दूसरी ओर कनाट स्ट्रीट, लंदन के जे० एच० केन्योन लिमिटेड अंडरटेकर्स नियुक्त किये गये। वे लोग तीन बजे शव लेने अस्पताल आ गये ।

घनश्यामदासजी की मृत्यु के लगभग दो वर्ष पहले एक दिन कृष्णकुमारजी उनके साथ बैठे थे । अचानक घनश्यामदासजी ने कृष्णकुमारजी से कहा कि उनकी जहां भी मृत्यु हो, वहीं उनका अंतिम संस्कार भी किया जाये । घनश्यामदासजी नहीं चाहते थे कि मृत्यु के बाद उनका शव एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाये । कृष्ण-कुमारजी ने इस प्रसंग पर वार्तालाप न करने का प्रयास किया और अपने पिताजी से पूछा कि वे इस तरह की बातें क्यों कर रहे हैं। उन्हें विश्वास है कि पिताजी सौ वर्ष अवश्य जिएंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्हें अभी बारह या तेरह वर्ष और जीवित रहना है । घनश्यामदासजी ने कहा कि जो कुछ वे कह रहे हैं, उसे गंभीरता से लिया जाये । कृष्णकुमारजी ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो इस बारे में वे भी अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करेंगे । उनका कहना था कि यदि पिताजी की मृत्यु भारत में होती है तो उनका अंतिम संस्कार वहीं किया जायेगा, जहां उनकी मृत्यु हुई है । उनकी मृत्यु यदि देश के बाहर विदेश में होती है तो उनके शव को भारत लाया जायेगा और यहीं उनका अंतिम संस्कार किया जायेगा । ऐसा न किया गया तो परिवार के लोगों, उनके बहुत से मित्रों तथा शुभेच्छुकों को कतई संतोष नहीं मिलेगा । घनश्यामदासजी अपनी बात पर अड़े रहे । उन्होंने जोर देकर कृष्णकुमारजी से कहा कि ऐसा नहीं किया जाना चाहिए । उन्होंने कहा, यदि उनकी मृत्यु विदेश में होती है तो उनका अंतिम संस्कार उसी स्थान पर कर दिया जाये । उनकी अस्थियां तथा भस्म भारत लायी जा सकती हैं और उन्हें गंगा में प्रवाहित किया जाये । घनश्यामदासजी की इस इच्छा के अत्यधिक विरोध के बावजूद कृष्णकुमारजी ने वचन दिया कि जो निर्देश दिये गये हैं, उनका पालन किया जायेगा । बाद में कृष्णकुमारजी को पता चला कि पिताजी ने यही इच्छा बसंतकुमारजी से भी व्यक्त की थी । घनश्यामदासजी की अंतिम इच्छा पूरी करने के लिए परिवार के सभी सदस्य लंदन गये। वहीं उनका अंतिम

संस्कार होना था।

रविवार, बारह जून, सुबह साढ़े पांच बजे बसंतकुमारजी अपनी पत्नी सरलाजी के साथ वहां पहुंचे। कुछ ही समय बाद पौत्र आदित्य विक्रम अपनी पत्नी राजश्री के साथ दादोजी को श्रद्धांजलि देने पहुंचे। माधवप्रसादजी, उनकी पत्नी प्रियंवदाजी, जयश्री और प्रकाश, मंजुश्री और शैलेश भी वहां आ गये। चंद्रकलाबाई के सुपुत्र प्रदीप डागा और अनुसूयाबाई के सुपुत्र भरत तापड़िया भी नानोजी को श्रद्धासुमन अर्पित करने पहुंच गये। दुर्गाप्रसाद मंडेलिया अपनी पत्नी के साथ पहुंचे।

उसी दिन परिवार के अन्य कई लोग, जो लंदन में थे, अथवा अमरीका से लौटे थे, जैसे विमल नोपानी, सरोज पोद्दार, लेखावरंजन पोद्दार, बसंत झंवर व उमा, राजेंद्र साबू व ऊषा आदि सबके सब वहां आ पहुंचे।

सोमवार, तेरह जून को कृष्णकुमारजी बिड़ला अपनी पत्नी मनोरमाजी के साथ भारतवर्ष से आ गये। कृष्णगोपालजी माहेश्वरी, पौत्र सुदर्शनकुमार और उनकी पत्नी सुमंगला, प्रपौत्र सिद्धार्थ और कुमारमंगलम भी वहां आ गये। फिर तो जैसे तांता लग गया भारतवर्ष से आनेवालों का—रमा बाबू गोयनका, हरिप्रसादजी सिंघी, ओंकारमल सोमानी और विजयमल सांड। विजयमल ने बंबई में 'बाबू' के लिए लीचियों-भरा एक टोकरा लंदन भेजने के लिए तैयार रखा था, पर खाली हाथ ही आना पड़ा था।

घनश्यामदासजी के तीनों पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीनिवास बिड़ला कलकत्ता में पिताजी के अंतिम कर्म-कांड को पूरा करने के लिए धर्म-वेदी पर बैठ गये। शेष दोनों पुत्र कृष्णकुमार और बसंतकुमार अपनी-अपनी पत्नी के साथ काकोजी के अंतिम दर्शनों के लिए गये। उनके काकोजी जैसे उनसे कह रहे थे, 'जब तक शरीर से कुछ भलाई हो, तब तक उसका संग रखना, और जब इसका अभाव हो, तब त्याग कर देना।'१९७

घनश्यामदासजी जैसे इस अवस्था में भी उन्हें अपने जीवन-योग का मूल-सूत्र समझा रहे थे।

विधिवत अंत्येष्टि-संस्कार कराने के लिए भारतीय विद्या-भवन के पंडित मटुर-कृष्णमूर्ति और पांच अन्य पंडित गीता के उसी अठारहवें अध्याय का, जो घनश्याम-दासजी को बहुत प्रिय था, पाठ कर रहे थे। घनश्यामदासजी का पार्थिव शरीर कांच

१९७. बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ १०

के ढक्कन वाली लकड़ी की पेटिका में रखकर फूलों से सुसज्जित गाड़ी पर चढ़ाया गया। शव-यात्रा गोल्डर्स ग्रीन क्रिमेटोरियन की ओर चल पड़ी।

शाम चार बजे उत्तरी लंदन के गोल्डर्स ग्रीन स्थान में हरे-भरे वृक्षों और पुष्प-क्यारियों के बीच स्थित दाह-गृह में शव-यात्रा पहुंची। शव-पेटिका गाड़ी से उतारकर दाह-गृह के पश्चिमी पूजा-गृह में ले जायी गयी। वहां अंतिम संस्कार के लिए उसे एक ऊंची टेबल पर रखा गया। अंतिम दर्शनों के लिए शव के चेहरे से सफेद वस्त्र हटाया गया। उस 'चेपल' में पूजा-घर का-सा वातावरण था। अंतिम दर्शनों के लिए आये हुए लोगों की भीड़ इतनी हो गयी थी कि कई लोग बाहर ही खड़े रहे। लंदन के सभी प्रमुख भारतीय वहां उपस्थित थे। घनश्यामदासजी के अनेक विदेशी मित्र भी वहां पहुंचे थे। बड़ी संख्या में भारतीय और विदेशी पत्रकार उपस्थित थे। लंदन की इस अंतिम श्रद्धांजलि में मानव और प्रकृति का मिलन सहज श्रद्धा प्रकट कर रहा था। घनश्यामदासजी जिस प्राकृतिक सौंदर्य के पुजारी थे, वह इस गोल्डर्स ग्रीन के वातावरण में व्यक्त हो रहा था——जगत में जो कुछ भी है, उसे ईश्वर के द्वारा समावृत जानो।

'श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव' का उच्चारण किया जा रहा था। वह रामधुन जो गांधीजी के अन्यतम अनुयायी घनश्यामदासजी को भी उतनी ही प्रिय थी जितनी गांधीजी को, वही रामधुन हो रही थी। उन्हीं पवित्र क्षणों में घनश्यामदासजी का पार्थिव शरीर 'दहन-भट्ठी' की अग्नि में भस्म होकर गोल्डर्स ग्रीन की हरीतिमा में तिरोहित हो गया।

चौदह जून मंगलवार की सुबह नौ बजे कृष्णकुमारजी और बसंतकुमारजी दाह-गृह में फूल चुनने गये। अस्थि-कलश बनाया गया। अस्थि-कलश पहले पार्क टावर्स फ्लैट में लाया गया। वहां और अनंतर लंदन हवाई अड्डे पर दर्शनों के लिए रखा गया। उसी दिन शाम चार बजे विमान से दोनों भाई अस्थि-कलश लेकर स्वदेश रवाना हो गये।

भारतवर्ष में बंबई, कलकत्ता, दिल्ली, पिलानी, हरिद्वार और अंततः गंगोत्तरी यात्रा के दौरान अस्थि-कलश के साथ उनके परिवार के लोग हर क्षण संलग्न रहे। सनातन धर्म और पारिवारिक मर्यादा का निर्वाह सर्वत्र होता रहा।

अनुमान है कि इन स्थानों पर एक लाख पच्चीस हजार से अधिक लोगों ने स्वर्गीय घनश्यामदासजी के अस्थि-कलश को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। बंबई में राज्यपाल चीफ एयर मार्शल लतीफ और उनकी पत्नी, मुख्य मंत्री बसंत दादा पाटिल, अनेक

मंत्री एवं प्रमुख प्रतिष्ठित नागरिक श्रद्धांजलि अर्पित करने आये। कलकत्ता में राज्यपाल श्री बी० डी० पांडे अपनी पत्नी के साथ तथा मुख्यमंत्री ज्योति बसु और कई मंत्रियों ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

दिल्ली में राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह स्वयं आये और उन्होंने अस्थि-कलश पर फूल-मालाएं चढ़ायीं। राष्ट्रपतिजी ने बिड़ला-परिवार को सांत्वना भी दी। दार्शनिक भाव से बात करते हुए वे बोले, "एक दिन सबको मरना ही है।" राष्ट्रपतिजी ने कहा, "घनश्यामदासजी के लिए तो परिवारजनों को शोक मनाना ही नहीं चाहिए क्योंकि वे अमरत्व को प्राप्त हो गये हैं।" प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी भारत में नहीं थीं लेकिन श्री राजीव गांधी आये और उन्होंने अस्थि-कलश पर फूल-मालाएं अर्पित कीं। उन्होंने शोक-संतप्त परिवार को सांत्वना भी दी।

दिल्ली से अस्थि-कलश पिलानी ले जाया गया, जो उनका जन्म-स्थान और शिक्षा के विकास के लिए उनका कार्यक्षेत्र था। कई संस्थानों से प्रोफेसर, शिक्षक, कर्मचारी, विद्यार्थी तथा पिलानी और पिलानी के आसपास सौ मील की दूरी तक के लोग अपनी अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करने वहां आये थे। राज्यमंत्री श्री शीशराम ओला को राजस्थान सरकार ने मंत्रिमंडल के सदस्यों की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए अपने प्रतिनिधि की हैसियत से भेजा था। पिलानी से अस्थि-कलश हरिद्वार ले जाया गया। वहां अस्थियों का कुछ हिस्सा वैदिक प्रथाओं के बीच हरि की पैड़ी से गंगा में प्रवाहित किया गया। बची हुई अस्थियां एक अस्थि-कलश में घनश्याम-दासजी के पुत्र कृष्णकुमारजी और बसंतकुमारजी द्वारा गंगोत्तरी ले जायी गयीं। उनके साथ सरला देवी, प्रकाश मोहता, जयश्री मोहता, शैलेश खेतान, मंजुश्री खेतान, दुर्गाप्रसाद मंडेलिया और कुछ अन्य लोग भी गये। लक्ष्मीनिवासजी कलकत्ता नहीं छोड़ सके, क्योंकि उन्हें वहां अपने पिताजी के अंतिम कर्म-कांड की विधियां पूरी करनी थीं। मनोरमा देवी हरिद्वार तक ही जा सकीं, अस्वस्थता के कारण इच्छा होते हुए भी अन्य कुटुंब वालों के कहने से वे गंगोत्तरी नहीं गयीं।

घनश्यामदासजी ने अंतिम सांस लिये पश्चिम में, किंतु उनका अंतिम अस्थि-विसर्जन पावन गंगोत्तरी में होने जा रहा था, यह कैसा प्रतीकात्मक संयोग था। घनश्यामदासजी पूरब और पश्चिम के जैसे सेतु बन गये।

इस गंगोत्तरी के बारे में उन्होंने स्वयं यह लिखा था, "गंगा का जन्म है और प्रलय भी है। फिर जन्म है और फिर प्रलय है। यह सारी लीला हम दिव्य-चक्षु अर्थात

विवेक-चक्षु से ही देख सकते हैं।"[१९८]

गंगा की ही तरह घनश्यामदासजी ने अपने जीवन-काल में हजारों मील की यात्रा की और कभी मुड़कर नहीं देखा। अपना हृदय विशाल रखा और कभी कृपणता नहीं की। सारी यात्रा में तटवर्ती वृक्षों को जैसे गंगा पोषण देती आयी है, उसी तरह घनश्यामदासजी ने नगर और ग्राम-ग्राम की यथासंभव पिपासा बुझायी। सबको दिया, सबका उपकार किया, किसी का बुरा नहीं किया। सबकी भलाई की, पर किसी से कुछ मांगा नहीं। आदि में वे आह्लादित नहीं हुए तो अंत में शोकार्त भी नहीं हुए। जैसे 'सम' पर संगीत का समापन होता है, उसी तरह उन्होंने अपने जीवन-संगीत को 'सम' पर लाकर छोड़ दिया। कबीर की इस पंक्ति को वे बहुत आदर से गाया करते थे--'दास कबीरा जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों रख दीनी चदरिया'। सारा जीवन इस यज्ञ-दृष्टि से जिया कि ईश्वर के बिना ऐश्वर्य कैसा ? उद्योग अकेला क्या कर सकता है ? शुद्ध उद्योग वही है, जिसमें उद्योग की कोई कमी न हो, अपनी निर्बलता का सदा ज्ञान हो, फल क्या होगा, इससे बेफिक्री हो, घनश्यामदासजी के यही सिद्धांत थे और यही उनकी सफलता के मूल-मंत्र भी।

---

१९८. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ २६७